# श्रमण

जुलाई-सितम्बर १९९५

वर्ष ४६ ] [ अंक ७-९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रधान सम्पादक

# प्रो० सागरमल जैन

सम्पादक

**डॉ० अशोक कुमार सिंह**

सह-सम्पादक

**डॉ० शिवप्रसाद**

वर्ष ४६ ] जुलाई - सितम्बर, १९९५ [ अंक ७ - ९

## प्रस्तुत अङ्क में


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | युगीन परिवेश में महावीर स्वामी के सिद्धान्त | — डॉ० सागरमल जैन | १ - ६ |
| २. | भक्तामरस्तोत्र : एक अध्ययन | — डॉ० हरिशंकर पाण्डेय | ७ - ९ |
| ३. | नागेन्द्रगच्छ का इतिहास | — डॉ० शिवप्रसाद | २० - ६५ |
| ४ | अर्धमागधी भाषा में सम्बोधन का एक विस्मृत शब्द-प्रयोग 'आउसन्ते' | — डॉ० के० आर० चन्द्र | ६६ - ६९ |
| ५. | चातुर्मास : स्वरूप और परम्पराएँ | — कलानाथ शास्त्री | ७० - ७३ |
| ६ | वाचक श्रीवल्लभरचित 'विदग्ध-मुण्डन' की दर्पण टीका की पूरी प्रति अन्वेषणीय है | — स्व० अगरचन्द नाहटा | ७४ - ७५ |
| ७ | द्रौपदी कथानक का जैन और हिन्दू स्रोतों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन | — श्रीमती शीला सिंह | ७६ - ८२ |
| ८ | पुस्तक समीक्षा | — | ८३ - ८८ |
| ९. | जैन जगत् | — | ८९ - ९८ |
| १०. | प्रवेश विज्ञापन | — | ९९ - १०० |


वार्षिक शुल्क — चालीस रुपये एक प्रति — दस रुपये

यह आवश्यक नहीं कि लेखक के विचारों से सम्पादक अथवा संस्थान सहमत हों।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# युगीन परिवेश में महावीर स्वामी के सिद्धान्त

*डॉ. सागरमल जैन*

आज सम्पूर्ण विश्व अशान्त एवं तनावपूर्ण स्थिति में है। बौद्धिक विकास से प्राप्त विशाल ज्ञान-राशि और वैज्ञानिक तकनीक से प्राप्त भौतिक सुख-सुविधा एवं आर्थिक समृद्धि मनुष्य की आध्यात्मिक, मानसिक एवं सामाजिक विपन्नता को दूर नहीं कर पायी है। ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने वाले सहस्राधिक महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के होते हुए भी आज का शिक्षित मानव अपनी स्वार्थपरता और भोग-लोलुपता पर विवेक एवं संयम का अंकुश नहीं लगा पाया है। भौतिक सुख-सुविधाओं का यह अम्बार भी उसके मानस को सन्तुष्ट नहीं कर सका है। आवागमन के सुलभ साधनों ने विश्व की दूरी को कम कर दिया है, किन्तु मनुष्य-मनुष्य के बीच हृदय की दूरी आज ज्यादा हो गई है। सुरक्षा के साधनों की यह बहुलता आज भी उसके मन में अभय का विकास नहीं कर पायी है। आज भी मनुष्य उतना ही आशंकित, आतंकित और आक्रामक है, जितना आदिम युग में रहा होगा। मात्र इतना ही नहीं, आज विध्वंसकारी शस्त्रों के निर्माण के साथ उसकी यह आक्रामक वृत्ति अधिक विनाशकारी बन गयी है और आज शस्त्र-निर्माण की इस अन्धी दौड़ में सम्पूर्ण मानव जाति की अन्त्येष्टि की सामग्री तैयार की जा रही है। आर्थिक सम्पन्नता की इस अवस्था में भी मनुष्य उतना ही अर्थलोलुप है जितना कि वह आदिम युग में कभी रहा होगा। आज मनुष्य की इस अर्थलोलुपता ने मानव जाति को शोषक और शोषित के दो ऐसे वर्गों में बाँट दिया है जो एक-दूसरे को पूरी तरह निगल जाने की तैयारी कर रहे हैं। एक भोगाकांक्षा और तृष्णा की दौड़ में पागल है, तो दूसरा पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए व्यग्र और विक्षुब्ध। आज विश्व में वैज्ञानिक तकनीक और आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से सबसे अधिक विकसित राष्ट्र यू. एस. ए. मानसिक तनावों एवं आपराधिक प्रवृत्तियों के कारण सबसे अधिक परेशान है। इस सम्बन्धी उसके आँकड़े चौकाने वाले हैं। आज मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि इस तथाकथित सभ्यता के विकास के साथ उसकी आदिम युग की एक सहज, सरल एवं स्वाभाविक जीवन-शैली भी उससे छिन गयी है। आज जीवन के हर क्षेत्र में

---

आकाशवाणी वाराणसी से २४-४-९४ को प्रसारित वार्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृत्रिमता और छद्मों का बाहुल्य है। उसके भीतर उसका 'पशुत्व' कुलांचे भर रहा है, किन्तु बाहर वह अपने को 'सभ्य' दिखाना चाहता है। अन्दर वासना की उद्दाम ज्वालायें और बाहर सच्चरित्रता और सदाशयता का छद्म जीवन, यही आज के मानव-जीवन की त्रासदी है, पीड़ा है। आसक्ति, भोगलिप्सा, भय, क्रोध, स्वार्थ और कपट की दमित मूल प्रवृत्तियाँ और उनसे जनित दोषों के कारण मानवता आज भी अभिशप्त है, आज वह दोहरे संघर्षों से गुजर रही है – एक आन्तरिक और दूसरे बाह्य। आन्तरिक संघर्षों के कारण आज उसका मानस तनावयुक्त है – विक्षुब्ध है, तो बाह्य संघर्षों के कारण सामाजिक जीवन अशान्त और अस्त-व्यस्त। आज का मनुष्य परमाणु तकनीक की बारीकियों को अधिक जानता है किन्तु एक सार्थक सामंजस्यपूर्ण जीवन के आवश्यक मूल्यों के प्रति उसका उपेक्षा भाव है। वैज्ञानिक प्रगति से समाज के पुराने मूल्य ढह चुके हैं और नये मूल्यों का सृजन अभी हो नहीं पाया है। आज हम मूल्य-रिक्तता की स्थिति में जी रहे हैं और मानवता नये मूल्यों की प्रसव-पीड़ा से गुजर रही है। आज हम उस कगार पर खड़े हैं जहाँ मानव-जाति का सर्वनाश हमें पुकार रहा है। देखें, इस दुःखद स्थिति में भगवान् महावीर के सिद्धान्त हमारा क्या मार्गदर्शन कर सकते हैं ?

वर्तमान मानव जीवन की समस्यायें निम्न हैं –

१. मानसिक अन्तर्द्वन्द, २. सामाजिक एवं जातीय संघर्ष, ३. वैचारिक संघर्ष एवं ४. आर्थिक संघर्ष।

अब हम इन चारों समस्याओं पर भगवान महावीर की शिक्षाओं की दृष्टि से विचार कर यह देखेंगे कि वे इन समस्याओं के समाधान के क्या उपाय प्रस्तुत करते हैं ?

**१. मानसिक अन्तर्द्वन्द**

मनुष्य में उपस्थित रागद्वेष की वृत्तियाँ और उनसे उत्पन्न क्रोध, मान, माया और लोभ के आवेग हमारी मानसिक समता को भंग करते हैं। विशेष रूप से राग और द्वेष की वृत्ति के कारण हमारे चित्त में तनाव उत्पन्न होते हैं और इसी मानसिक तनाव के कारण हमारा बाह्य व्यवहार भी असन्तुलित हो जाता है। इसलिए भगवान महावीर ने राग-द्वेष और कषायों अर्थात् अहंकार, लोभ आदि की वृत्तियों के विजय को आवश्यक माना था। वे कहते थे कि जब तक व्यक्ति राग-द्वेष से ऊपर नहीं उठ जाता है, तब तक वह मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। वीतरागता ही महावीर की दृष्टि में जीवन का सबसे बड़ा आदर्श है। इसी की उपलब्धि के लिए उन्होंने 'समभाव' की 'साधना' पर बल दिया। यदि महावीर की साधना-पद्धति को एक वाक्य में कहना हो तो हम कहेंगे कि वह समभाव की साधना है। उनके विचारों में धर्म का एकमात्र लक्षण है – समता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे कहते हैं कि समता ही धर्म है। जहाँ समता है, वहाँ धर्म है और जहाँ विषमतायें हैं वहीं अधर्म है। आचारांग में उन्होंने कहा था कि आर्यजनों ने समत्व की साधना को ही धर्म बताया है। समत्व की यह साधना तभी पूर्ण होती है जबकि व्यक्ति क्रोध, मान, माया और लोभ जैसे आवेगों पर विजय पाकर राग-द्वेष की वृत्ति से ऊपर उठ जाता है। वर्तमान युग में मानव-जाति में जो मानसिक तनाव दिन- प्रतिदिन बढ़ रहे हैं उनका कारण यह है कि राग-द्वेष की वृत्तियाँ मनुष्य पर अधिक हावी हो रही हैं। वस्तुतः व्यक्ति की ममता, आसक्ति और तृष्णा ही इन तनावों की मूल जड़ है और महावीर इनसे ऊपर उठने की बात कह कर मनुष्य को तनावों से मुक्त करने का उपाय सुझाते हैं। आचारांग में वे कहते हैं कि जितना-जितना ममत्व है उतना-उतना दुःख और जितना-जितना निर्ममत्व है उतना ही सुख है। उनके अनुसार सुख और दुःख वस्तुगत नहीं है, आत्मगत है। वे हमारी मानसिकता पर निर्भर करते हैं। यदि हमारा मन अशान्त है तो फिर बाहर से सुख-सुविधा का अम्बार भी हमें सुखी नहीं कर सकता है।

## २. सामाजिक एवं जातीय संघर्ष

सामाजिक और जातीय संघर्षों के मूल में जो प्रमुख कारण रहा है – वह यह है कि व्यक्ति अपने अन्तस् में निहित ममत्व व राग-भाव के कारण मेरे परिजन, मेरी जाति, मेरा धर्म, मेरा राष्ट्र ऐसे संकुचित विचार विकसित कर अपने 'स्व' को संकुचित कर लेता है। परिणामस्वरूप अपने और पराये का भाव उत्पन्न होता है फलतः भाई-भतीजावाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि का जन्म होता है। आज मनुष्य-मनुष्य के बीच सुमधुर सम्बन्धों के स्थापित होने में यही विचार सबसे अधिक बाधक है। हम अपनी रागात्मकता के कारण अपने 'स्व' की संकुचित सीमा बनाकर मानव समांज को छोटे-छोटे घेरों में विभाजित कर देते हैं फलतः मेरे और पराये का भाव उत्पन्न होता है और यही आगे चलकर सामाजिक संघर्षों का कारण बनता है। भगवान महावीर का सन्देश था कि 'सम्पूर्ण मानव जाति एक है ( एगा मणुस्सजाई ); उसे जाति, वर्ण अथवा राष्ट्र के नाम पर विभाजित करना, यह मानवता के प्रति सबसे बड़ा अपराध है। महावीर के अनुसार सम्पूर्ण मानव-जाति को एक और प्रत्येक मानव को अपने संमान बनाकर ही हम अपने द्वारा बनाये गए क्षुद्र घेरों से ऊपर उठ सकते हैं और तभी मानवता का कल्याण सम्भव होगा।

भारत में आज जो जातिगत संघर्ष चल रहे हैं उसके पीछे मूलतः जातिगत ममत्व एवं अहंकार की भावना ही कार्य कर रही है। महावीर का कहना था कि जाति या कुल का अहंकार मानवता का सबसे बड़ा शत्रु है। किसी जाति या कुल में जन्म लेने मात्र से कोई व्यक्ति महान नहीं होता है अपितु वह महान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है अपने सदाचार से एवं अपने तप-त्याग से। महत्त्व जाति विशेष में जन्म लेने का नहीं सदाचार का है। भगवान महावीर ने जाति के नाम पर मानव समाज के विभाजन को और ब्राह्मण आदि किसी वर्ग विशेष की श्रेष्ठता के दावे को कभी स्वीकार नहीं किया। उनके धर्म-संघ में हरिकेशी जैसे चाण्डाल, शकडाल जैसे कुम्भकार, अर्जुन जैसे माली और सुदर्शन जैसे वणिक सभी समान स्थान पाते थे। वे कहते थे कि चाण्डाल कुल में जन्म लेने वाले इस हरिकेशी बल को देखो, जिसने अपनी साधना से महानता अर्जित की है। वे कहते थे जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता है। इस प्रकार महावीर ने जातिगत आधार पर मानवता के विभाजन को एवं जातीय अहंकार को निन्दनीय मानकर सामाजिक समता एवं मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है।

### ३. वैचारिक संघर्ष

आज मानव समाज में वैचारिक संघर्ष, राजनीतिक पार्टियों के संघर्ष और धार्मिक संघर्ष भी अपनी चरम सीमा पर हैं। आज धर्म के नाम पर मनुष्य एक-दूसरे के खून का प्यासा है। महावीर की दृष्टि में इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हम अपने ही धर्म, सम्प्रदाय या राजनैतिक मतवाद को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और इस प्रकार दूसरों के मत या मन्तव्यों की आलोचना करते हैं। महावीर का कहना था कि दूसरे धर्म, सम्प्रदाय या मतवाद को पूर्णतः मिथ्या कहना यही हमारी सबसे बड़ी भूल है। वे कहते हैं कि जो लोग अपने-अपने मत की प्रशंसा और दूसरे के मतों की निन्दा करते हैं वे सत्य को ही विद्रूपित करते हैं। महावीर की दृष्टि में सत्य का सूर्य सर्वत्र प्रकाशित हो सकता है अतः हमें यह अधिकार नहीं कि हम दूसरों को मिथ्या कहें। दूसरों के विचारों, मतवादों या सिद्धान्तों का समादर करना महावीर के चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता रही है। वे कहते थे कि दूसरों को मिथ्या कहना यही सबसे बड़ा मिथ्यात्व है। भगवान महावीर ने जिस अनेकान्तवाद की स्थापना की उसका मूल उद्देश्य विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और मतवादों के बीच समन्वय और सद्भाव स्थापित करना है। उनके अनुसार हमारी आग्रहपूर्ण दृष्टि ही हमें सत्य को देख पाने में असमर्थ बना देती है। महावीर की शिक्षा आग्रह की नहीं अनाग्रह की है। जब तक दुराग्रह रूपी रंगीन चश्मों से हमारी चेतना आवृत्त रहेगी हम सत्य को नहीं देख सकेंगे। वे कहते थे कि सत्य, सत्य होता है, उसे मेरे और पराये के घेरे में बाँधना ही उचित नहीं है। सत्य जहाँ भी हो उसका आदर करना चाहिए। महावीर के इस सिद्धान्त का प्रभाव परवर्ती जैनाचार्यों पर भी पड़ा है। आचार्य हरिभद्र कहते हैं कि व्यक्ति चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बौद्ध हो या अन्य धर्मावलम्बी, यदि वह समभाव की साधना करेगा; राग, आसक्ति या तृष्णा के घेरे से उठेगा तो वह अवश्य ही मुक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को प्राप्त करेगा। अपने ही धर्मवाद से मुक्ति मानना यही धार्मिक सद्भाव में सबसे बड़ी बाधा है। महावीर का सबसे बड़ा अवदान है कि उन्होंने हमें आग्रह मुक्त होकर सत्य देखने की दृष्टि दी और इस प्रकार मानवता को धर्मों, मतवादों के संघर्षों से ऊपर उठना सिखाया।

**४. आर्थिक संघर्ष**

आज विश्व में जब कभी युद्ध और संघर्ष के बादल मँडराते हैं तो उनके पीछे कहीं न कहीं कोई आर्थिक स्वार्थ होते हैं। आज का युग अर्थप्रधान युग है। मनुष्य में निहित संग्रह-वृत्ति और भोग-भावना अपनी चरम सीमा पर है। वस्तुतः हम अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर दूसरों की पीड़ाओं को जानना ही नहीं चाहते। अपनी संग्रह-वृत्ति के कारण हम समाज में एक कृत्रिम अभाव उत्पन्न करते हैं। जब एक ओर संग्रह के द्वारा सम्पत्ति के पर्वत खड़े होते हैं तो दूसरी ओर स्वाभाविक रूप से खाइयाँ बनती हैं। फलतः समाज धनी और निर्धन, शोषक और शोषित ऐसे दो वर्गों में बँट जाता है और कालान्तर में इनके बीच वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ होते हैं। इस प्रकार समाज-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है। समाज में जो भी आर्थिक विषमतायें हैं उसके पीछे महावीर की दृष्टि में परिग्रह वृत्ति ही मुख्य है। यदि समाज से आर्थिक संघर्ष समाप्त करना है तो हमें मनुष्य की संग्रह-वृत्ति और भोगवृत्ति पर अंकुश लगाना होगा। महावीर ने इसके लिए अपरिग्रह, परिग्रह-परिमाण और उपभोग-परिभोग परिमाण के व्रत प्रस्तुत किये। उन्होंने बताया कि मुनि को सर्वथा अपरिग्रही होना चाहिये। साथ ही गृहस्थ को भी अपनी सम्पत्ति का परिसीमन करना चाहिए, उसकी एक सीमा-रेखा बना लेनी चाहिए।

इसी प्रकार उन्होंने वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति के विरोध में मनुष्य को यह समझाया था कि वह अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को सीमित करे। महावीर कहते थे कि मनुष्य को जीवन जीने का अधिकार तो है किन्तु दूसरों को सुख-सुविधाओं से वंचित करने का अधिकार नहीं है। उन्होंने व्यक्ति को खान-पान आदि वृत्तियों पर संयम रखने का उपदेश दिया था। यह जानकर सुखद आश्चर्य होता है कि भगवान् महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व अपने गृहस्थ उपासकों को यह निर्देश दिया था कि वे अपने खान-पान की वस्तुओं की सीमा निश्चित कर लें। जैन आगमों में इस बात का विस्तृत विवरण है कि गृहस्थ को अपनी आवश्यकता की किन-किन वस्तुओं की मात्रा निर्धारित कर लेनी चाहिए। अभी विस्तार से चर्चा में जाना सम्भव नहीं है फिर भी इतना कहा जा सकता है कि भगवान महावीर ने मनुष्य की संचय-वृत्ति पर संयम रखने का उपदेश देकर मानव जाति के आर्थिक संघर्षों के निराकरण का एक मार्ग प्रशस्त किया। वस्तुतः भगवान् महावीर ने वृत्ति में अनासक्ति, विचारों में अनेकान्त,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार में अहिंसा, आर्थिक जीवन में अपरिग्रह और उपभोग में संयम के सिद्धान्त के रूप में मानवता के कल्याण का जो मार्ग प्रस्तुत किया था, वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना कि आज से २५०० वर्ष पूर्व था। आज भी अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह की यह त्रिवेणी मानव-जाति के कल्मषों को धो डालने के लिए उतनी ही उपयोगी है जितनी महावीर के युग में थी।

आज मात्र वैयक्तिक स्तर पर ही नहीं सामाजिक स्तर पर भी अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह की साधना करनी होगी, तभी हम एक समतामूलक समाज की रचना कर मानव जाति को सन्त्रासों से मुक्ति दिला सकेंगे और यही महावीर के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

*निदेशक*

**पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# भक्तामरस्तोत्र : एक अध्ययन

*हरिशंकर पाण्डेय*

आँखें जब प्रभुयाद में मचलने लगती हैं, इन्द्रिय-वृत्तियाँ थम जाती हैं, नयन रिमझिम बरसने लगते हैं, अपनी अपूर्णता, असमर्थता का भान एवं किसी महत्पद पर पूर्ण विश्वास हो जाता है, तब हृदय में निवासित श्रद्धा-श्वेता शब्दों के माध्यम से बाहर संसार में परिव्याप्त होने लगती है, और वे ही शब्द वैसे सशक्त नौका का काम करते हैं, जिस पर चढ़कर भक्त भगवान के आनन्द-निकेतन में पहुँच जाता है। जहाँ पर प्रभु का सान्निध्य प्राप्त कर वह धन्य-धन्य हो जाता है, कृतपुण्य हो जाता है। कौन वैसा प्राणी होगा जो वैसे पूर्ण-धाम को प्राप्त कर सदा-सर्वदा के लिए विरमित न हो जाए ?

जब समर्थ प्रियतम की याद में भक्त हृदय विगलित हो जाता है, गुरु-स्मरण मात्र से ही आँसू-सरिता तरंगायित होने लगती है, राग, रस और ध्वन्यात्मकता के संगम पर रम्यता लास्य करने लगती है, तब भक्त और भगवान को छोड़कर सम्पूर्ण संसार समाप्त हो जाता है, उसी क्षण स्तुति, स्तोत्र आदि का प्रसव होता है। उसमें प्रभु-गुण-गायन की तरंगें आकाश व्यापी हो जाती हैं और उस स्तुति काव्य की धारा इतनी सशक्त और तीव्र होती है कि भक्त तो स्वयं बह ही जाता है, भगवान का भी कोई पता नहीं रहता, दोनों मिलकर एक हो जाते हैं।

प्रथमतः स्तुतिकाव्य का प्रारम्भ-स्थल विचार्य है। स्तुति का प्रादुर्भाव सुखावसान ( दुःख ) दुःखावसान ( सुख ) और प्राण प्रयाणम् वसर में होता है। सुख के बाद दुःख कितना भयावह होता है – यह कोई द्रौपदी, उत्तरा, गजेन्द्र, चन्दनबाला या मानतुङ्ग ही बता सकता है। जब मृत्यु सामने दिखाई पड़े तो शरण्य कौन हो सकता है ? कोई मारजेता समर्थ पुरुष ही उस समय काम आ सकता है। जब तक अपनी शक्ति काम आती है, तब तक शायद समर्थ की खोज प्रारम्भ नहीं होती, प्रभुपाद का स्मरण कहाँ आता है ? दुःख की घड़ी में ही प्रभु याद आते हैं, इसलिए भक्तों की याचना भी विलक्षण होती है। वह सम्पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़कर विपत्ति की याचना करता है, क्योंकि विपत्ति में ही प्रभु याद आते हैं, और प्रभु का दर्शन ही अपुनर्भव का कारण है। कुन्ती कहती है –

**विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।**[1]
**भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ।।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**भक्तामर-स्तोत्र** का उद्भवकाल मृत्यु के अन्धकार से आच्छन्न था। मानतुङ्ग फँस चुका है – बेड़ियों में, कुचक्रियों के कुचक्र में। अब क्या करे? इस क्षण में तो एकमात्र उसका समर्थ-उपास्य ही शरण्य हो सकता है। ध्यान केन्द्रित करता है – अपने प्रभु-पादपद्मों में, जैसे भागवत का गजेन्द्र प्राक्तन संस्कारवशात् अपने हृदयेश की स्मृति में अपनी वृत्तियों को सर्वात्मना नियोजित करता। हृदय के भाव सुन्दर शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगते हैं, जो वाद के संसार में मानतुङ्ग-हृदय से निःसृत स्तोत्र-प्रस्रविनी **भक्तामर-स्तोत्र**[2] और गजेन्द्र के मनोमय आकाश से उद्भूत सुस्वर स्वर लहरियाँ **गजेन्द्र-मोक्ष**[3] के नाम से प्रसिद्धि पाती हैं।

**१. स्तोता**

जिसकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ प्रभु को प्राप्तकर जाती हैं, उसी के हृदय धरातल से समर्थ की स्तुति सरिता प्रस्रवित होती है। जिसने हृदय को खोल दिया, राग-द्वेषादि कषायों को विगलित कर दिया, वही किसी गुणाकर का गुणकीर्तन करने के लिए प्रस्तुत होता है, जिसका एकमात्र लक्ष्य उसका उपास्य ही रह जाना है।

स्तोता का प्रथम गुण होता है — अपनी हीनता, नीचता और अज्ञानता को प्रभु के सामने उद्घाटित कर देना। उसको यह ज्ञान होता है कि वह तो है महामूर्ख – समर्थ की स्तुति, उनका गुणसंगायन कैसे करे ? लेकिन उसी के सहारे उसी के गुणगायन में संलग्न हो जाता है। मानतुङ्गाचार्य जब मृत्युसंकट में फँस गया, तब समर्थ-शरण्य की शरणागति ही दिखाई पड़ी। एक तरफ विराट् विभूतियों से परिपूर्ण प्रभु जिनेश्वर और दूसरी ओर अल्पसत्त्वप्राणी। यहाँ भी वही स्थिति है जो गीता में कृष्ण के विश्वरूप के सामने अर्जुन की हुई थी। महान की स्तुति करना मानतुङ्ग को बालक द्वारा चन्द्रबिम्बग्रहण के समान दिखाई पड़ा। यही 'अहं का विलय' स्तोता का स्तव्य की ओर जाने का प्रथम-सोपान तथा स्तुति-काव्य की प्रसवभूमि है —

**बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित-पादपीठ !।**
**स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम् ।।**
**बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दुबिम्ब-**
**मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्**[4] **।।**

अपनी असमर्थता और अज्ञानता के बोध से भक्त हताश नहीं होता बल्कि उसी के सहारे शक्तिमान होकर अपने उपास्य के घर जाने के लिए तैयार हो जाता है —

**सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश ।**
**कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रम्,**
**नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्[५] ।।**

यही वह बिन्दु है, जहाँ भक्त सीमा को लाँघकर असीम की ओर प्रस्थान करता है, सीमा में ही असीम की सत्ता को पकड़ लेता है। भक्त कवि मानतुङ्ग को भी इसमें महारथ हासिल है --

**अल्पश्रुतं श्रुतवनां परिहास-धाम,**
**त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्मान्।**
**यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,**
**तच्चाम्र-चारु कलिकानिकरैकहेतुः[६]।।**

और जब भक्त सम्पूर्णतया प्रभु-चरणों में प्रपन्न हो जाता है, तब कहाँ भय, कहाँ दुःख और असमर्थता ? यही प्रपत्ति/भक्ति का मूल है। स्तोता इसी से पूर्ण हो जाता है, आत्म-रमण में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार हीनता-बोध, प्रभु चरण में अटूट-विश्वास और प्रभु-विभूति-बोध आदि स्तोता के लक्षण भक्तामर स्तोत्र में संघटित होते हैं।

**२. स्तव्य**

स्तव्य कोई समर्थ होता है, जो समय पर काम आ सके। वह सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, बन्धनमुक्त, कृपालु, करुणापूर्ण, दीनरक्षक, रूपनगर, सुधामय, सुरम्याँग, शुभलक्षण सम्पन्न, रुचिर, तेजोमय, बलवान, सत्यभाक्, प्रियभाषी, विजितेन्द्रिय, विदग्ध, चतुर, वशी, दान्त, वक्षन्य, समताधर्मनिरत, आर्तसंरक्षक एवं भवसागरसन्तारक होता है। **भक्तामर स्तोत्र** के प्रथम श्लोक में भगवान ऋषभदेव के तीन रूपों का बिम्बन हुआ है—

( क ) देवों द्वारा प्रणम्य,

( ख ) पापतमविनाशक और

( ग ) भवजल में गिरते हुए जीवों का एकमात्र अवलम्ब। प्रभु विश्ववंद्य एवं जगत्स्तुत्य होता है —

**यः संस्तुतः सकलवाङ्मय तत्त्वबोधाद्,**
**उद्भूत बुद्धि पटुभिः सुरलोकनाथैः।**
**स्तोत्रैर्जगतित्रय चित्तहरैरुदारैः,**
**स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्[७]।।**

१. *सर्वज्ञ* — स्तव्य सर्वज्ञ होता है। अल्पसत्व या अल्पज्ञानी स्तव्य नहीं हो सकता है। जिसके चरण विद्वज्जन के लिए शिरोभूषण है। **भक्तामर** का स्तव्य भी उसी सरणि में प्रतिष्ठित है। वह अनन्त ज्ञानराशि से परिपूर्ण है :

**ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,**
**नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं,**
**नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि[८]।।**

*२. गुणसमुद्र* – वह अनेक गुण रत्नों की खनि है। गुणसमुद्र, गुणशशांक, परमपुरुष, परमप्रकाशक आदि अनन्तानन्त गुण उसमें समाहित हैं। उसके गुणों का गायन वृहस्पति भी नहीं कर सकते हैं :

**वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशांककान्तान्,**
**कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया[९]।।**

सरस्वती भी नील-पर्वत के बराबर काजल-स्याही समुद्ररूपी पात्र में डालकर कल्पवृक्षरूपी लेखनी से उसके गुणों को लिखने में पार नहीं पा सकती हैं। **शिवमहिम्नस्तोत्र** की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

**असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे,**
**सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।**
**लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,**
**तदपि तव गुणानामीश ! पारं न याति[१०] ।।**

वह सभी गुणों का आश्रय है[११]।

*३. श्रेष्ठता* – स्तुति-काव्य में स्तव्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन मुख्य रूप से होता है। रूप, गुण आदि में वह त्रैलोक्य में श्रेष्ठ है। आत्मिक और शारीरिक उभयविध सौन्दर्य की खानि है। उपास्य इतना सुन्दर होता है कि आँखें उसका एक बार दर्शन कर लेने के बाद अन्यत्र कुछ देखना ही नहीं चाहती हैं। इन्द्रियाँ विरमित हो जाती हैं, मन स्थिर हो जाता है उसके त्रिभुवनमोहन रूप को निरखकर। पितामह भीष्म का स्तव्य कितना सुन्दर है :

**त्रिभुवनकमन तमालवर्ण**
**रविकरगौरवाम्बरं दधाने।**
**वपुरलककुलावृताननाब्जं**
**विजयसखे इतिरस्तु में अनवद्या[१२]।।**

वह प्रभु अनिमेषावलोकनीय है :

**दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं**
**नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।**
**पीत्वा पयः शशिकरद्युति-दुग्धसिन्धोः**
**क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्[१३] ?**

वह रूप का अन्तिम प्रतिमान होता है –

**यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति[१४]।**

वह रम्यता का रम्य सिन्धु है। देव, मनुष्य और नागकुमारों के नेत्र को आकृष्ट करने वाले त्रैलोक्यसौभग मुख के सामने बेचारे चन्द्रमा की क्या स्थिति?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्रहारि**
**निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।**
**बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य,**
**यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम्[१५]।।**

विवेच्य स्तोत्र के स्तव्य की महनीयता की अनुगूंज सम्पूर्ण स्तोत्र में सुनाई पड़ती है –

**नात्यद्भूतं भुवन-भूषण ! भूतनाथ !**
**भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।**
**तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा**
**भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति[१६]।।**

४. *परीषहजयी* – संसार के दुःख से भक्तों को वही निजात दिला सकता है, जो दुःख-समुद्र में मेरु पर्वत की तरह अविचल एवं उन्नत रह सके। भगवान ऋषभ का चरित्र एक वीर परीषह-जेता के रूप में भी रूपायित हुआ है–

**चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिः**
**नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।**
**कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन**
**किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्[१७]?**

५. *जगदीश्वर* – वह जगत् का स्वामी, नाथ एवं सम्राट होता है। **भक्तामर** में अनेक स्थलों पर प्रभु के इस रूप का चित्रण हुआ है। वह एकमात्र जगन्नाथ और जगत् का स्वामी है –

**ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं ...[१८]।**

'नाथ' विशेषण अनेक बार प्रयुक्त हुआ है[१९]।

६. *भक्तोद्धारक* – स्तव्य के आर्तिहर, शरण्यगतरक्षक, तापत्रयविनाशक पापभंजक आदि रूप **भक्तामर** में अधिक कमनीय बन पड़ते हैं। वह सम्पूर्ण लोकों का दुःखविनाशक है –

**तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ ![२०]।**
**तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय[२१]।।**

४१-४८ श्लोक भी इस रूप के प्रकाशन में प्रमाण हैं।

७. *मृत्यु जेता* – मृत्यु की भयंकरता से वही ऊपर उठा सकता है जो स्वयमेव उससे उपरत हो चुका है। वही परम पुरूष अनन्यतम शिवपन्थ होता है। मृत्युकाल का एकमात्र शरण्य होता है। मृत्यु संकट जब सामने हो तो उसको छोड़कर कौन बचा सकता है ?

अर्जुन के शब्द – **त्वामेको दह्यमानामपवर्गोऽसि संसृतेः[२२]।।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरा कहती है — **पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पतेः।**
**नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम्**[२३]।।

**भक्तामर** का भक्त कहता है — हे प्रभु ! आपका नामकीर्तन ही इस प्रलय तूफान से बचा सकता है —

**कल्पान्तकाल-पवनोद्धव-वह्निकल्पम्**
**दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्।**
**विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तम्,**
**त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम्**[२४] ।।

८. *प्रकाश स्वरूप* — भक्तामर का स्तव्य प्रकाश का पुंज है। वैसा दीप है जिसके सामने चन्द्र-सूर्य भी हस्व हो जाते हैं। वह सूर्यातिशायी महिमायुक्त है—

**सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र ! लोके**[२५] ।।

वह अपूर्वचन्द्र बिम्ब[२६] एवं तमोविनाशक[२७] है। वह प्रकाशस्वरूप[२८] एवं निर्धूमदीप[२९] है।

९. *विभूति* — इस स्तोत्र में प्रभु की विभूतियों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। अपूर्वलावण्य युक्त शरीर-२८, प्रकाशपूर्ण रत्ननिर्मित सिंहासनासीन-२९, श्वेतचँवर-३०, छत्र-३१, दिगन्तव्यापीयश-३२, मनोहारिणी वाणी-३३, प्रभामण्डल-३४, दिव्यवाणी-३५, आदि का सुन्दर चित्रण उपन्यस्त है।

इस प्रकार भक्तामर का स्तव्य विभिन्न गुण मणियों से परिपूर्ण है। ज्ञान शक्तियों के सर्वदा प्रबुद्ध रहने के कारण वह बुद्ध, तीनों लोकों का कल्याणकारक होने से शंकर, सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप कल्याणमार्ग के उपदेष्टा होने से धाता और सभी पुरुषों में उत्तम होने से पुरुषोत्तम अर्थात् विष्णु भी है —

**बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धिबोधात्,**
**त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।**
**धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्,**
**व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि**[३०]।।

अव्यय, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, आद्य, अनन्त, योगीश्वर, अनेकमेक, अमल आदि सार्थक अभिधानों से विभूषित है —

**त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,**
**ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम्।**
**योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं**
**ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः**[३१]।।

## ३. स्तुति के तत्व

**भक्तामर स्तोत्र** के विलोडन से अग्रलिखित तत्त्वों पर प्रकाश पड़ता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. *आत्मप्रकाशन* — प्रभु गुणों की भव्यता एवं विराटता के सामने भक्त इतना भावित हो जाता है कि अपने अन्तस्थल को खोलकर, अपनी नीचता, कुरूपता को लेकर प्रभु (अपने प्रिय) के सामने खड़ा हो जाता है। उसके पास अपने सर्जनहार से छिपाने के लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है। जब मर्म का पूर्णतया उद्घाटन हो जाता है तभी उस समर्थ से सम्पर्क होता है। भागवत के गजेन्द्र और मानतुंगाचार्य में काफी समानता है। हो क्यों नहीं? भक्ति की सीमा में जाकर सम्पूर्ण धाराएँ एक ही हो जाती हैं। गजेन्द्र कहता है — जिसे बड़े-बड़े लोग नहीं जान सके, उसको मैं क्षुद्र जीव कैसे जान सकता हूँ —

**न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुः**
**जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्**[३२]।।

भक्त मानतुंग अपनी असमर्थता को प्रभु को बता देता है — हे प्रभु ! अब तुम्हीं मेरा बेड़ा पार कर सकते हो। हम तो अल्पसत्त्व असमर्थ जीव हैं। स्तव करने का सामर्थ्य मुझमें कहाँ[३३] ?

२. *माहात्म्य ज्ञान* — भक्त या स्तोता को अपने उपास्य की महनीयता का ज्ञान हमेशा बना रहता है। गोपियों को यह ज्ञान है कि उसका प्रभु केवल नन्दलाल नहीं बल्कि सम्पूर्ण गुणों का स्वामी है —

**व्यक्तं भवान् व्रजमयार्तिहरोऽभिजातो**
**देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता**[३४]।।

विवेच्य स्तुति-काव्य में भक्त को यह अखण्ड विश्वास है कि उसका उपास्य कोई सामान्य नहीं, बल्कि वह त्रैलोक्यपूज्य, त्रिभुवनार्तिहर, विश्वगोप्ता, अव्यय एवं अनन्तस्वरूप है। विपत्तिकाल में वह एकमात्र समर्थ शरण्य है।

३. *आश्चर्य से स्थैर्य की यात्रा* — भगवद्विभूतियों का दर्शन स्तुतिकाल में ही होता है। जो कभी देखा न गया उसको देखकर आश्चर्य तो होना ही है, लेकिन धीरे-धीरे प्रभु-पाद-पद्मों में वह भक्त रमण करने लगता है। **भक्तामर**कार की यात्रा भी इसी धरातल पर प्रारम्भ होती है।

४. *अन्धकार से प्रकाशलोक में* — स्तुतिकाल की यात्रा घने अन्धकार लोक से प्रारम्भ होती है, जहाँ कोई प्रकाशपुञ्ज दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन भक्त धीरे-धीरे अपने प्रभु के सम्बल पर वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ केवल प्रकाश ही शेष रहता है, वहाँ उसके उपास्य का प्रकाश ही जगमगाता है।

५. *बिम्बात्मकता या चित्रात्मकता* — यह स्तुतिकाव्य का प्रमुख तत्त्व है। उपास्य के विभिन्न रूपों एवं गुणों का स्पष्ट बिम्बन इस काव्य विधा में होता है। **भक्तामर** के प्रथम छः श्लोकों में भक्त की निरीहता एवं समर्पण का बिम्ब उदात्त एवं उत्कृष्ट है। चौथे श्लोक में प्रणयकालीन जल एवं उसे पार करने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असमर्थता आदि भावों का सहज रूपांकन हुआ है। अन्य बिम्ब का उदाहरण इस प्रकार है — जगत्स्तुत्य प्रभु श्री ऋषभदेव (२) भवजल का एकमात्र अवलम्ब प्रभु-१, प्रभु के अनुपम रूप-१३, काम परीषह में मन्दरपर्वत के समान भगवान की स्थिरता-१५, अपूर्व दीपक-१७, १८ आदि।

कलागत बिम्बों में अलंकार-बिम्बों की रसनीय-चारुता उत्कृष्ट है। उपमानों के प्रयोगक्रम में बालक द्वारा चन्द्रबिम्ब-ग्रहण के लिए प्रयास-३, मृगो-मृगेन्द्र–५, सूर्य अन्धकार–७, कोकिल–६, कमल–६, जलनिधि–११, आदि उपन्यस्त हैं।

६. *रमणीयता एवं आह्लादकता* — ये तत्त्व एक श्रेष्ठ काव्य के प्राण-स्वरूप होते हैं। स्तुति-काव्य श्रेष्ठ काव्य है। **भक्तामर** का प्रारम्भ ही रमणीयता के धरातल पर होता है। आह्लादकता आद्यन्त विद्यमान हैं।

७. *रसनीयता* — स्तुति-काव्य में रस का साम्राज्य होता है। विवेच्य स्तोत्र में भक्तिरस उपचित है। वीर, अद्‌भुत एवं शान्तरस की छटा चर्व्य है। अपनी ह्रस्वता, प्रभु-पाद-पद्मों में पूर्ण समर्पण और विगलित हृदय से उनके गुणों का वर्णन भक्तिरस के उदाहरण हैं[३५]।

भगवद्विभूतियों के वर्णन में वीररस का सौन्दर्य आस्वाद्य है। श्लोक संख्या ३१ में भगवान् ऋषभदेव का चक्रवर्तीत्व रूप में निरूपण वीररस का उत्कृष्ट उदाहरण है। कामपरीक्षह के आने पर ऋषभ भगवान का मेरुवत् अडोल रहना, वीरत्व या संयमवीर का चूड़ान्त निदर्शन है[३६]।

भगवान के ऐश्वर्य-वर्णन में अद्‌भुत रस का सौन्दर्य आस्वाद्य है[३७]।

सांसारिक दुःख या निर्वेद शान्तरस के स्थाई भाव हैं। **भक्तामर स्तोत्र** का मूल उद्‌गम कारण सांसारिक दुःख ही है, अतएव इसमें शान्तरस का प्राधान्य है।

८. *मुक्तात्मकता* — स्तुति-काव्य का यह प्रमुख वैशिष्ट्य है। इसमें प्रत्येक श्लोक रसनीयता एवं आस्वाद्यता की दृष्टि से पूर्वापर स्वतन्त्र होते हैं। **अग्निपुराण**कार के अनुसार जिनमें अर्थद्योतन की स्वतः शक्ति हो उसे मुक्तक कहते हैं — **मुक्तकं श्लोकश्चैश्थमत्कार क्षम रसताम्**[३८]। कविराज विश्वनाथ ने अन्य पद्य निरपेक्ष या स्वतन्त्र काव्य को मुक्तक माना है — **छंदो बुद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्**[३९]। एक ही छन्द में वाक्यार्थ की समाप्ति मुक्तक है[४०]। उद्‌विन्यस्त लक्षण सन्दर्भ में विचार करने पर प्रतीत होता है कि **भक्तामर स्तोत्र** का प्रत्येक श्लोक रसबोधक एवं अर्थद्योतन में समर्थ है। अशोक तरुतवलासीन ऋषभदेव का सौन्दर्य द्रष्टव्य है —

**उच्चैरशोकतरु संश्रितमुन्मयूख-**
***माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।***

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं**
**बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति[४१]।।**

एक-एक पद्य भक्त-हृदय-सागर में निविष्ट अनन्त भावरत्नों की राशि को उद्घाटित करने में समर्थ है। अनुपमा जननी के अनुपम पुत्र की महनीयता का अवलोकन –

**स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,**
**नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।**
**सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं**
**प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम्[४२]।।**

९. *संगीतात्मकता* – गीत-गंगा का उदय हृदय के समत्व धरातल से होता है। भक्त या स्तोता को जब किसी कारणवशात् प्रभु की स्मृति आती है या स्वयं स्मरण करता है तो उसका हृत्प्रदेश चमत्कृत हो उठता है, भावों की तरंगिनी तरंगायित होने लगती है, बाह्य शब्द-संसार भी साथ देने को तैयार हो जाता है –

संगीतात्मकता की प्रवाहिणी प्रवाहित होने लगती है जो इतनी समर्थ और सशक्त होती है कि भक्त उसमें बह ही जाते हैं संसार का भी कहीं पता नहीं रहता है। **भक्तामर** के प्रत्येक चरण में लयात्मकता, गेयता संगीतात्मकता विद्यमान है।

१०. *अलंकार विन्यास* – स्तोता अपनी भावनाओं को अलंकारों के माध्यम से सशक्त रूप से अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। अन्य काव्यों की तुलना में स्तोत्र-साहित्य में अलंकार-प्रयोग का प्राचुर्य होता है। भक्तामर स्तोत्र में उपमा, परिकर, अर्थापत्ति, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक एवं उदात्त आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है –

*( क ) उपमा* –जहाँ उपमेय का उपमान के साथ सादृश्य स्थापित किया जाय वहाँ उपमा अलंकार होता है। भक्तामर-स्तोत्र में अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग हुआ है –

**प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगोमृगेन्द्रं**
**नाभ्येति किं निजशिशो परिपालनार्थम्[४३]।।**

यहाँ भक्त की उपमा मृगी से की गयी है। यद्यपि सिंह सामने होता है, अपनी असमर्थता का ज्ञान भी उसे होता है लेकिन बच्चे के साथ अतिशय प्रेम के कारण सिंह के सामने होती है, उसी प्रकार भक्त अपनी अज्ञानता से परिचित होते हुए भी स्तुति में प्रवृत्त होता है। अन्य उदाहरण –

**सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्[४४]।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ प्रभु-संस्तव के कर्मान्धकार-विदारण सामर्थ्य को द्योतित करने के लिए सुर्यांशु को उपमान बनाया गया है। इसी प्रकार ८, ६, २८ वाँ श्लोक भी द्रष्टव्य है।

*( ख ) परिकर* – साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग परिकर अलंकार होता है। प्रभु के अनेक गुणनिष्ठ विशेषणों के द्वारा भक्त उनका गुणगायन करता है। स्तुति साहित्य का यह प्रिय अलंकार है –

**१. नात्यद्भुतं भुवन-भूषणः भूतनाथ !**[५५]

**२. बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धिबोधात्**
**त्वं शंकरोऽपि भुवनत्रयशंकरत्वात्**[५६]।।

*( ग ) दृष्टान्त* – उपमेय-उपमान में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है। इसमें लौकिक या शास्त्रीय उदाहरणों से वर्णनीय का सफलतापूर्वक उपन्यास किया जाता है। भक्तामर में अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग हुआ है –

१. भक्त की असमर्थता को प्रकट करने के लिए

**बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्बः - ३**

दृष्टान्त अलंकार के साथ अर्थापत्ति का सुन्दर प्रयोग उपर्युक्त और अधोविन्यस्त दोनों उदाहरणों में हुआ है – **पीत्वा पयः शशिकर द्युतिदुग्धसिन्धोः**-।।

व्यतिरेक – सामान्यतया उपमान, उपमेय से अधिक गुण वाला होता है, लेकिन जहाँ पर उपमेय की अपेक्षा उपमान ह्रस्व हो, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। भक्तामर का यह प्रिय अलंकार है। अनेक स्थलों पर भगवान् ऋषभदेव की गुणीय उदात्तता एवं श्रेष्ठता के प्रतिपादन के लिए इसका उपयोग किया गया है–

१. प्रभु की अलौकिकता को द्योतित करने के लिए उन्हें अमरदीप यानी सामान्य दीपक से श्रेष्ठ बताया गया है।

२. भगवान सूर्य से भी अधिक महिमा वाले हैं–

**सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके**[५८] !

३. मूर्ख सौन्दर्य की अधिकता – १८, १६

४. भगवान की श्रेष्ठता – २१

५. ऋषभ-जननी की श्रेष्ठता – २२

**अर्थापत्ति – कैमुतिक-न्याय और दण्डापुपिका-न्याय से अर्थापत्ति अलंकार होता है। उदाहरणार्थ १५वां श्लोक द्रष्टव्य है।**

**ललित उदात्त का सौन्दर्य** – १. ललित – वस्तु में निहित आकर्षण तत्त्व एवं आह्लादकारिता सौन्दर्य का अनिवार्य गुण है। इस आकर्षण के मूल में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो गुण है उसे लालित्य या चारुता कहते हैं। **भक्तामर** में इसका चर्वण अनेक स्थलों पर होता है। भगवान का रूप किसके लिए मनोहारी नहीं है। वह सृष्टि के सम्पूर्ण जीवों के नेत्रों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। ऋषभदेव के वल्गुमुख-लावण्य के समक्ष सुन्दरता के सम्पूर्ण उपमान हस्व हो चुके हैं। जो आँखें उस रूप्य-रूप का दर्शन एक बार भी कर लेती हैं उनकी दर्शन-यात्रा सदा के लिए स्थगित हो जाती है –

**किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः**
**कश्चिन्मनोहरति नाथ ! भवान्तरेऽपि[४६] ।।**

गोपियों के स्तव्य भगवान श्रीकृष्ण के त्रैलोक्य सौभगरूप पर कौन आसक्त नहीं हो जाता –

**त्रैलोक्य सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं**
**यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्य बिभ्रन् ।।**

२. उदात्त – सत्य और शिव का जहाँ भी अभिव्यंजन हो उसे उदात्त कहते हैं। भव्यता, विराटता, महनीयता, परात्परता आदि गुण इसी में समाहित हैं। केवल ललित से सौन्दर्य पूर्ण नहीं होता बल्कि ललित और उदात्त जहाँ दोनों एकत्रित होते हैं वही सौन्दर्य की प्रसवभूमि बन जाती है। **भक्तामर** में ललित के साथ उदात्त का सौन्दर्य रम्य है। भगवान के महनीय-ऐश्वर्य का वर्णन उदात्त के अन्तर्गत है।

३. असीम का सौन्दर्य – भक्त अपने भावों एवं शब्दों के माध्यम से किसी अनन्तसत्ता को पकड़ना चाहता है, जो सुख ह्रास में सहायक हो सके। **भक्तामर** में अनन्त का सौन्दर्य निखरकर जीवित प्राणी गद्‌गद् हो जाता है। स्तोता मानव-देह में ही आदि रूप का संधान कर लेता है जो लोक में उपमानातीत बन जाता है। मृत्यु जय भी उसी के यहाँ जाकर सम्भव होता है।

४. स्तुति का लक्ष्य – स्तुति से क्या लाभ? किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भक्त स्तुति करता है? स्तुति का चरम लक्ष्य निजस्वरूप अथवा प्रभुपद की प्राप्ति है। दृश्य जगत् का निषेध कर भक्त अन्त में अपना भी निषेध कर देता है। अपने अहं का विलय कर प्रभुमय बन जाता है। पितामह भीष्म की यह दशा द्रष्टव्य है –

**प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं**
**समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः[४९]।।**

स्तोता को प्रथम लाभ तो यह होता है कि कोई समर्थ उसका हाथ थाम लेता है। समर्थ को प्राप्तकर स्वयं भक्त समर्थवान् बन जाता है। पापविनाश[५२], भवसन्तति एवं तम-नाश[५३], भयमुक्ति[५४], सांसारिक लाभ, -युद्ध-विजय[५५], वडवाग्नि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से मुक्ति[46], शारीरिक सौन्दर्य एवं गुणलक्ष्मी[47] की उपलब्धि होती है। अन्त में भक्त मृत्यु को जीतकर[48] परमानन्दमय-निकेतन में शाश्वत विश्राम पा लेता है।

## पादटिप्पण

१. श्रीमद्भागवत् महापुराण १. ८. २५
२. श्री भक्तामरस्तोत्र, मानतुङ्गाचार्यकृत, अनेक स्थलों से प्रकाशित।
३. श्री मद्भागवतपुराण ८. ३
४. भक्तामरस्तोत्र – ३
५. तत्रैव – ५
६. तत्रैव – ६
७. तत्रैव – २
८. तत्रैव – २०
९. तत्रैव – ४
१०. शिवमहिम्नस्तोत्र – ३२
११. भक्तामरस्तोत्र – १४
१२. श्रीमद्भागवत् महापुराण – १. ६. ३३
१३. भक्तामरस्तोत्र – ११
१४. तत्रैव – १२
१५. तत्रैव – १३
१६. तत्रैव – १०
१७. तत्रैव – १५
१८. तत्रैव – १४
१९. तत्रैव – ८, १६, २१
२०. तत्रैव – २६
२१. तत्रैव – २६
२२. श्रीमद्भागवत महापुराण – १. ७. २२
२३. तत्रैव – १. ८. ६
२४. श्री भक्तामरस्तोत्र ४०
२५. तत्रैव – २७
२६. तत्रैव – १८
२७. तत्रैव – १६
२८. तत्रैव – २३
२९. तत्रैव – १६
३०. तत्रैव – २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. तत्रैव – २४
३२. भागवतपुराण ८. ३. ६
३३. भक्तामरस्तोत्र ३, ४, ५, ६
३४. भागवत् पुराण १०. २६. ४१
३५. भक्तामरस्तोत्र ५, १३
३६. तत्रैव – १५
३७. तत्रैव – १७, १८
३८. अग्निपुराण – ३३७, ३३
३९. साहित्यदर्पण – ६, ३१४
४०. काव्यानुशासन – ८. १०
४१. भक्तामरस्तोत्र – २८
४२. तत्रैव – २२
४३. तत्रैव – ५
४४. तत्रैव – १७
४५. तत्रैव – १०
४६. तत्रैव – २५
४७. तत्रैव – १६
४८. तत्रैव – १७
४९. तत्रैव – २१
५०. भागवत् महापुराण – १०. २६
५१. तत्रैव – १. ६. ४२
५२. भक्तामरस्तोत्र – ७
५३. तत्रैव – १२
५४. तत्रैव – ४७
५५. तत्रैव – ४३
५६. तत्रैव – ४४
५७. तत्रैव – ४८
५८. तत्रैव – २३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# नागेन्द्रगच्छ का इतिहास

*डॉ० शिवप्रसाद*

उत्तर भारतीय निर्ग्रन्थ संघ के अल्पचेल ( बाद में श्वेताम्बर ) सम्प्रदाय के अन्तर्गत नागेन्द्रकुल ( बाद में नागेन्द्रगच्छ ) का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। अब से लगभग ४०० वर्ष पूर्व तक विद्यमान इस गच्छ की उत्पत्ति कोटिक गण के नाइल ( नागिल्य – नागेन्द्र ) शाखा से हुई, ऐसा माना जाता है। **पर्यूषणाकल्प**[1] की 'स्थविरावली'[2] ( जिसका प्रारम्भिक भाग ई० सन् १०० के बाद का माना जाता है ) के अनुसार आर्यवज्र के प्रशिष्य और आर्य वज्रसेन के शिष्य आर्य नाइल से नाइली शाखा का उद्‌भव हुआ[3]। देववाचककृत **नन्दीसूत्र** की 'स्थविरावली' ( रचनाकाल प्रायः ई० सन् ४५० )[4] में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है तथापि वहाँ इसे नाइलकुल कहा गया है।[5] ऐसा मालूम होता है कि पाँचवी-छठीं शताब्दी से कुछ शाखाएँ कुल कहलाने लगी थीं और गुप्तयुग के पश्चात् तथा मध्ययुग के प्रारम्भपूर्व तथा मध्ययुग की शुरुआत में नागेन्द्रकुलरूपेण ही उल्लेख प्राप्त होता है और इससे सम्बद्ध अनेक साक्ष्य मिलने लगते हैं।

**नन्दीसूत्र** की 'स्थविरावली' में आर्य नागार्जुन ( जिनकी अध्यक्षता में ई० सन् की चतुर्थ शताब्दी के तृतीय चरण में आगम ग्रन्थों के संकलन के लिये वलभी में वाचना हुई थी ) और उनके शिष्य आर्य भूतदिन्न को नाइलकुल का बतलाया गया है।[6] आर्य नाइल के पश्चात् और आर्य नागार्जुन के पूर्व इस कुल में कौन-कौन से आचार्य हुए इस बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। ठीक यही बात आर्य भूतदिन्न के पट्टधर परम्परा के विषय में भी कही जा सकती है।

उक्त साक्ष्यों के आधार पर नागेन्द्रकुल के प्रारम्भिक आचार्यों को निम्नलिखित क्रम में रखा जा सकता है –

आर्य वज्र

**कल्पसूत्र** 'स्थविरावली' |

आर्य वज्रसेन ( ई० सन् की प्रथम शताब्दी )

|

आर्य नाइल ( नागेन्द्र )

|

|

|

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**नन्दीसूत्र** 'स्थविरावली'

आर्य नागार्जुन ( ई० सन् की चौथी शताब्दी का तृतीय चरण )

आर्य भूतदिन्न ( भूतदत्त )

नाइलकुल से सम्बद्ध अगला साक्ष्य गुप्तकाल का है। **पउमचरिय** ( रचनाकाल प्रायः ई० सन् ४७३ ) के रचयिता विमलसूरि भी इसी कुल के थे[७]। ग्रन्थ की प्रशस्ति में उन्होंने न केवल अपने कुल बल्कि अपने गुरु और प्रगुरु का भी नामोल्लेख किया है[८] —

आर्य राहु

आर्य विजय

विमलसूरि ( प्रायः ई० सन् ४७३ में **'पउमचरिय'** के रचनाकार )

आर्य नागार्जुन और आर्य भूतदिन्न से सम्बद्ध नाइलकुल की परम्परा तथा विमलसूरि द्वारा उल्लिखित इस कुल की गुरु-परम्परा के बीच क्या सम्बन्ध था, यह अस्पष्ट ही है। इसी प्रकार विमलसूरि के अनुगामियों के बारे में भी कोई जानकारी नहीं मिलती।

उक्त सभी साक्ष्यों के पश्चात् इस कुल से सम्बद्ध जो साक्ष्य मिलते हैं वे इनसे २०० साल बाद के हैं। ये गुजरात में अकोटा से प्राप्त दो मितिविहीन धातुप्रतिमाओं पर उत्कीर्ण हैं।[९] इनमें से प्रथम प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख में नागेन्द्रकुल के सिद्धमहत्तर की शिष्या आर्यिका खम्बलिया का नाम मिलता है। डॉ० उमाकान्त शाह ने प्रतिमा के लक्षण और उस पर उत्कीर्ण लेख की लिपि के आधार पर उसे ई० सन् की सातवीं शताब्दी का बतलाया है।[१०] द्वितीय प्रतिमा पर नागेन्द्रकुल के ही एक श्रावक सिंहण का नाम मिलता है।[११] शाह ने इस लेख को भी सातवीं शताब्दी के आस-पास का ही दर्शाया है।[१२]

सातवीं शताब्दी तक इस कुल के आचार्यों को श्वेताम्बर श्रमणसंघ में अग्रगण्य स्थान प्राप्त हो चुका था। इसी कारण उस युग की एक महत्त्वपूर्ण रचना **व्यवहारचूर्णी** में उनके मन्तव्यों को स्थान प्राप्त हुआ।[१३]

आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में इस कुल से सम्बद्ध दो साहित्यिक प्रमाण मिलते हैं। **जम्बूचरियं** और **रिसिदत्ताचरिय** के रचनाकार गुणपाल नागेन्द्रकुल से ही सम्बद्ध थे। **रिसिदत्ताचरिय** की प्रशस्ति के अनुसार गुणपाल के प्रगुरु का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम वीरभद्र था, जो नाइलकुल के थे। उक्त प्रशस्ति में यह भी कहा गया है कि उक्त ग्रन्थ हाइकपुर में वर्षावास के समय पूर्ण किया गया।[७४] **जम्बूचरियं** की प्रशस्ति में इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा के बारे में कुछ विस्तृत जानकारी दी है जिसके अनुसार नाइलकुल में प्रद्युम्नसूरि ( प्रथम ) नामक आचार्य हुए। उनके शिष्य का नाम वीरभद्र था। वीरभद्र के शिष्य प्रद्युम्नसूरि ( द्वितीय ) हुए। **जम्बूचरियं** के रचनाकार गुणपाल इन्हीं के शिष्य थे।[७५]

**कुवलयमालाकहा** ( रचनाकाल शक सं० ७००/ई० सन् ७७८ ) के कर्ता उद्योतनसूरि ने भी अपनी उक्त कृति की प्रशस्ति में अपने सिद्धान्तगुरु के रूप में किन्हीं वीरभद्रसूरि का उल्लेख किया[७६] है जिन्हें समसामयिकता और नामसाम्य के आधार पर गुणपालकथित वीरभद्रसूरि से समीकृत किया जा सकता है[७७] –

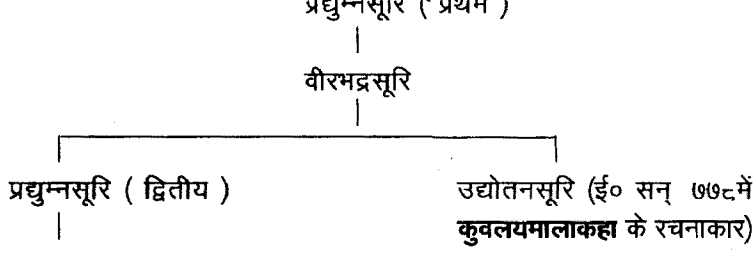


( **रिसिदत्ताचरिय** एवं **जम्बूचरियं** के रचनाकार )

नागेन्द्रकुल से सम्बद्ध अगला साक्ष्य ईस्वी सन् की १०वीं शताब्दी के तृतीय चरण का है। जम्बूमुनि द्वारा रचित **जिनशतक** की पंजिका ( रचनाकाल वि० सं० १०२५/ई० सन् ९६९ ) के रचनाकार साम्बमुनि इसी कुल के थे।[७८] भृगुकच्छ से प्राप्त शक संवत् ९१०/ई० सन् ९८८ की पीतल की एक त्रितीर्थी जिनप्रतिमा पर नागेन्द्रकुल के पार्श्वलगणि का प्रतिमाप्रतिष्ठापक आचार्य के रूप में उल्लेख मिलता है। वहाँ उक्त मुनि के गुरु और प्रगुरु का भी नाम दिया गया है[७९] –

१. आसीन्नागांद्रकुल लक्ष्मणसूरिर्नितांतसांत
२. मतिः।। तद्गाच्छ गुरुतरुयन्नाम्नासीत् सीलरुद्रगणि
३. :। सिष्येण मूलवसातो जिनत्रयमकार्य्यत।। भृगु
४. कच्छे तदीयन पार्श्ववल्लगणिना वरं।। सकसं
५. वत् ।। ९१० ।।

उक्त उत्कीर्ण लेख में तालव्य **श** के स्थान पर दन्त्य **स** का प्रयोग हुआ है। इसे कुछ सुधार के साथ आधुनिक पद्धति से निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है[८०] –

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**आसीन्नागेन्द्रकुले लक्ष्मणसूरिर्नितान्तशान्तमतिः।**
**तद्गच्छे गुरुतरुयन् नाम्नाऽऽसीत् शीलरु(भ) द्रगणिः।।**
**शिष्येण मूलवसतौ जिनत्रयमकार्यत।**
**भृगुकच्छे तदीयेन पार्श्वल्लगणिना वरम्।।**
शक संवत् ६१०

लक्ष्मणसूरि
|
शीलभद्रगणि
|
पार्श्वल्लगणि ( शक सं० ६१०/ई० सन् ६८८ में त्रितीर्थी जिनप्रतिमा के प्रतिष्ठापक )

पार्श्वलगणि के प्रगुरु लक्ष्मणसूरि ई० सन् की १०वीं शताब्दी के द्वितीय चरण में विद्यमान माने जा सकते हैं।

ईस्वी सन् की ११वीं शताब्दी से इस कुल के बारे में विस्तृत विवरण प्राप्त होने लगते हैं। इस शताब्दी के पाँच प्रतिमालेखों में इस कुल का नाम मिलता है। वि० सं० १०८६/ई० सन् १०३०[२१] और वि० सं० १०६३/ई० सन् १०३७[२२] के दो धातु प्रतिमा लेखों में नागेन्द्रकुल और इससे उद्भूत सिद्धसेन-दिवाकरगच्छ का उल्लेख है। राधनपुर से प्राप्त वि० सं० १०६१/ई० सन् १०३५ की धातुप्रतिमा पर भी नागेन्द्रकुल ( भ्रमवश पढ़ा गया पाठ कानेन्द्रकुल ) का उल्लेख मिलता है।[२३] ओसियां से प्राप्त वि० सं० १०८८/ई० सन् १०३२ के एक प्रतिमालेख में सर्वप्रथम नागेन्द्रकुल के स्थान पर नागेन्द्रगच्छ का नाम मिलता है।[२४] इस लेख में प्रतिमाप्रतिष्ठापक आचार्य वासुदेवसूरि को नागेन्द्रगच्छीय बतलाया गया है। महावीर जिनालय, जूनागढ़ से प्राप्त अम्बिका की एक प्रतिमा ( वि० सं० १०६२/ई० स० १०३६ ) पर भी इस कुल का उल्लेख हुआ है।[२५] समुद्रसूरि के शिष्य और **भुवनसुन्दरीकथा** ( प्राकृतभाषामय, रचनाकाल शक सं० ६७५/ई० सन् १०५३ ) के रचनाकार विजयसिंहसूरि भी इसी कुल के थे।[२६]

महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल के पितृपक्ष के कुलगुरु और प्रसिद्ध आचार्य विजयसेनसूरि भी नागेन्द्रगच्छ के थे।[२७] उनके शिष्य उदयप्रभसूरि ने स्वरचित **धर्माभ्युदयमहाकाव्य**[२८] ( रचनाकाल वि० सं० १२६० से पूर्व ) की प्रशस्ति में अपने गुरु-परम्परा की लम्बी तालिका दी है जिसके अनुसार नागेन्द्रगच्छ में महेन्द्रसूरि नामक एक आचार्य हुए जो आगमों के महान ज्ञाता और तर्कशास्त्र में पारंगत थे। उनके शिष्य शान्तिसूरि हुए जिन्होंने दिगम्बरों को शास्त्रार्थ में हराया। उनके आनन्दसूरि और अमरचन्द्रसूरि नामक दो शिष्य हुए। चौलुक्य नरेश जय सिंह सिद्धराज ( वि० सं० ११५०-११६८/ ई० सन् १०६४-११४२ ) ने उन्हें 'व्याघ्र शिशुक'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और 'सिंह शिशुक' की उपाधि प्रदान की थी क्योंकि उन्होंने बाल्यावस्था में ही प्रतिवादियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। अमरचन्द्रसूरि के बारे में कहा जाता है कि इन्होंने **सिद्धान्तार्णव** की रचना की थी। इनके शिष्य हरिभद्रसूरि हुए जो अपने अमोघ देशना के कारण 'कलिकालगौतम' के नाम से विख्यात थे। हरिभद्रसूरि के शिष्य विजयसेनसूरि हुए जो महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल के पितृपक्ष के कुलगुरु थे। **धर्माभ्युदय महाकाव्य** के रचनाकार उदयप्रभसूरि इन्हीं के शिष्य थे।[२६] वि० सं० १३०२/ई० सन् १२४६ के एक प्रतिमालेख में विजयसेनसूरि के एक अन्य शिष्य यशो ( देव ) सूरि का भी उल्लेख मिलता है।[३०] **पुरातन प्रबन्ध संग्रह** ( रचनाकाल ई० सन् की १५वीं शताब्दी ) के अन्तर्गत एक प्रशस्ति के अनुसार उदयप्रभसूरि के शिष्य जिनभद्रसूरि ने वि० सं० १२६०/ई० सन् १२३४ में **नानाकथानकप्रबन्धावली** की रचना की।[३१]

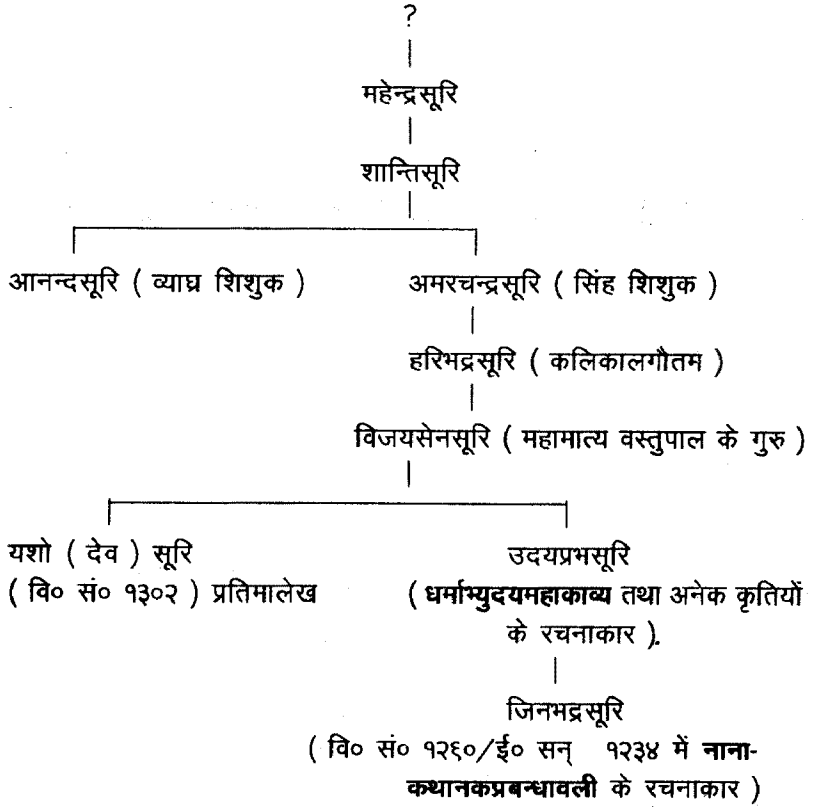


साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों द्वारा नागेन्द्रगच्छ की एक दूसरी शाखा का भी पता चलता है। **चन्द्रप्रभचरित**[३२] ( रचनाकाल वि० सं० १२६४/ई०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन् १२०८ ) के रचनाकार देवेन्द्रसूरि और **वासुपूज्यचरित**[३३] ( रचनाकाल वि० सं० १२९६/ई० सन् १२४३ ) के रचनाकार वर्द्धमानसूरि ने उक्त कृतियों की प्रशस्तियों में नागेन्द्रगच्छ, जिससे वे सम्बद्ध थे, अपनी विस्तृत गुरु-परम्परा दी है जो इस प्रकार है –

वीरसूरि
|
वर्धमानसूरि
|
रामचन्द्रसूरि
|
चन्द्रसूरि
|
देवसूरि
|
अभयदेवसूरि
|
धनेश्वरसूरि
|

| | |
|---|---|
| विजयसिंहसूरि | देवेन्द्रसूरि ( वि० सं० १२६४/ई०सन् १२०८ में **चन्द्रप्रभचरित** के रचनाकार ) |
| वर्धमानसूरि ( द्वितीय ) ( वि० सं० १२९६/ ई० सन् १२४३ में **वासुपूज्यचरित** के रचनाकार | |

अजाहरा पार्श्वनाथ जिनालय के निकट से कुछ साल पूर्व धातु की कुछ भूमिगत जिन-प्रतिमायें प्राप्त हुई थीं। इस संग्रह में शीतलनाथ की भी एक सलेख प्रतिमा है, जिस पर उत्कीर्ण लेख के अनुसार नागेन्द्रगच्छीय विजयसिंहसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने वि० सं० १३०५/ई० सन् १२४९ में इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी। श्री शिवनारायण पाण्डेय ने इस प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख की वाचना दी है[३४] जिसे प्राध्यापक मधुसूदन ढांकी ने संशोधन के साथ प्रस्तुत किया है[३५], जो इस प्रकार है –

संवत् १३०५ ज्येष्ठ वदि ८ शने श्री प्राग्वाटान्वये विवरदेव मंत्रिणी महाणु श्रेयोऽर्थं सुत मण्डलिकेन श्री शीतलनाथ बिबं कारितं **श्रीनागेन्द्रगच्छे श्रीवीरसूरि**संताने **श्रीविजयसिंहसूरिशिष्यैः श्रीवर्धमानसूरिभिः** प्र ( ति ) ष्ठितम् ।।

ये वर्धमानसूरि **वासुपूज्यचरित** के कर्ता से अनन्य मालूम होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**वासुपूज्यचरित** की प्रशस्ति में ग्रन्थकार ने अपनी गुर्वावली के साथ-साथ अपने एक शिष्य उदयप्रभसूरि का भी नाम दिया है।[३६] वि० सं० १३३०/ई० सन् १२७४ के गिरनार के लेख में भी किन्हीं उदयप्रभसूरि का नाम मिलता है।[३७] यद्यपि इस लेख में उक्त सूरि के गच्छ, गुरु आदि के नाम का उल्लेख नहीं है, किन्तु इस काल में नागेन्द्रगच्छ को छोड़कर किसी अन्य गच्छ में उक्त नाम के कोई अन्य मुनि नहीं हुए हैं। अतः इन्हें समसामयिकता और नामसाम्य के आधार पर नागेन्द्रगच्छीय वर्धमानसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि से अभिन्न माना जा सकता है।[३८]

इसी प्रकार वि० सं० १३३८/ई० सन् १२८२ में प्रतिष्ठापित और वर्तमान में मनमोहन पार्श्वनाथ जिनालय, बड़ोदरा में संरक्षित धातु की एक चौबीसी जिन-प्रतिमा[३९] पर उत्कीर्ण लेख में उल्लिखित प्रतिमा प्रतिष्ठापक नागेन्द्रगच्छीय महेन्द्रसूरि के गुरु उदयप्रभसूरि समसामयिकता और नामसाम्य के आधार पर पूर्वोक्त वर्धमानसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि से अभिन्न माने जा सकते हैं। **स्याद्वाद-मंजरी** ( रचनाकाल वि० सं० १३४८/ई० सन् १२९२ ) के कर्ता मल्लिषेणसूरि ने भी अपने गुरु का नाम नागेन्द्रगच्छीय उदयप्रभसूरि बतलाया है[४०] जिन्हें प्रायः सभी विद्वान् वस्तुपाल-तेजपाल के गुरु विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि से अभिन्न मानते हैं[४१] किन्तु प्राध्यापक ढांकी ने सटीक प्रमाणों के आधार पर मल्लिषेणसूरि को वर्धमानसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि से भिन्न सिद्ध किया है।[४२] इस प्रकार उक्त उदयप्रभसूरि के दो शिष्यों का भी पता चलता है। साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर नागेन्द्रगच्छ के इस शाखा की गुरु-शिष्य परम्परा की एक तालिका संगठित की जा सकती है, जो इस प्रकार है —

वीरसूरि
|
वर्धमानसूरि ( प्रथम )
|
रामसूरि
|
चन्द्रसूरि
|
देवसूरि
|
अभयदेवसूरि
|

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनेश्वरसूरि

विजयसिंहसूरि

वर्धमानसूरि ( द्वितीय )
( वि० सं० १२६६/ई० सन् १२४३ में **वासुपूज्यचरित** के रचनाकार, वि० सं० १३०५/ई० सन् १२४३ में शीतलनाथ की प्रतिमा के प्रतिष्ठापक )

उदयप्रभसूरि ( **वासुपूज्यचरित** की प्रशस्ति तथा वि० सं० १३३०/ई० सन् १२७४ के गिरनार के अभिलेख में उल्लिखित )

महेन्द्रसूरि ( वि० सं० १३३८/ई० सन् १२८२ में चौबीसी जिनप्रतिमा के प्रतिष्ठापक )

मल्लिषेणसूरि ( वि० सं० १३४८/ई० सन् १२९२ में **स्याद्वादमंजरी** के रचनाकार )

देवेन्द्रसूरि
( वि० सं० १२६४/ई० सन् १२०८ में **चन्द्रप्रभचरित** के रचनाकार )

नागेन्द्रगच्छ की उपरोक्त उपशाखा और महामात्य वस्तुपाल के गुरु विजयसेनसूरि और उनके शिष्यं उदयप्रभसूरि से सम्बद्ध नागेन्द्रगच्छ की उपशाखा के बीच परस्पर क्या सम्बन्ध था, यह ज्ञात नहीं होता।

साहित्यिक साक्ष्यों द्वारा इस गच्छ की एक तीसरी उपशाखा का भी पता चलता है। मुनि धर्मकुमार द्वारा रचित **शालिभद्रचरित्र** ( रचनाकाल वि० सं० १३३४/ई० सन् १२७८ ) की प्रशस्ति में रचनाकार ने अपनी गुरु-परम्परा दी है[४३], जो इस प्रकार है —

?

हेमप्रभसूरि

धर्मघोषसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमप्रभसूरि
|
विबुधप्रभसूरि
|
मुनिधर्मकुमार
( वि० सं० १३३४/ई० सन् १२७८
में **शालिभद्रचरित्र** के रचनाकार )

यह उपशाखा भी १२वीं-१३वीं शताब्दी में विद्यमान थी, परन्तु उसका सम्बन्ध पूर्वकथित दो अन्य उपशाखाओं से क्या रहा, इसका पता नहीं चलता।

**प्रबन्धचिन्तामणि**[४४] ( रचनाकाल वि० सं० १३६१/ई० सन् १३०५ ) के रचनाकार मेरुत्तुंगसूरि भी इसी गच्छ के थे। ग्रन्थ की प्रशस्ति में उन्होंने अपने गच्छ, ग्रन्थ के रचनाकाल के साथ-साथ अपने गुरु चन्द्रप्रभसूरि का भी उल्लेख किया है।[४५] लेकिन इसके अतिरिक्त अपने गच्छ की परम्परा के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है।

उत्तरमध्यकाल में भी इस गच्छ से सम्बद्ध साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इनका अलग-अलग विवरण इस प्रकार है —

गुणदेवसूरि के शिष्य गुणरत्नसूरि द्वारा मरु-गुर्जर भाषा में रचित **ऋषभरास** और **भरतबाहुबलिरास** ये दो कृतियाँ मिलती हैं।[४६] गुणरत्नसूरि के शिष्य सोमरत्नसूरि ने वि० सं० १५२० के आस-पास **कामदेवरास** की रचना की।[४७] इसी प्रकार गुणदेवसूरि के एक अन्य शिष्य ज्ञानसागर द्वारा वि० सं० १५२३/ई० सन् १४६७ में **जीवभवस्थितिरास** और वि० सं० १५३१/ई० सन् १४७५ में **सिद्धचक्रश्रीपालचौपाई** की रचना की गयी।[४८]

गुणदेवसूरि
|
गुणरत्नसूरि ( **ऋषभरास** एवं **भरतबाहुबलिरास** के रचनाकार )
|
सोमरत्नसूरि ( वि० सं० १५२० के आसपास **कामदेवरास** के कर्ता )

ज्ञानसागर ( वि०सं० १५२३ में **जीवभवस्थितिरास** एवं वि० सं० १५३१ में **सिद्धचक्रश्रीपालचौपाई** के कर्ता )

अकोटा से प्राप्त धातु की दो जिनप्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेख को नागेन्द्रकुल का पुरातन अभिलेखीय साक्ष्य माना जा सकता है। डॉ० उमाकान्त शाह ने इनकी वाचना दी है[४९], जो निम्नानुसार है —

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. ॐ नागेन्द्र कुले सिद्धमहत्तर
२. सिष्यायाः खंभिल्यार्जिकायाः

पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख

द्वितीय लेख तीर्थंकर की प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। इसका मूलपाठ निम्नानुसार है —

१. ॐ देवधर्मोयं नागेन्द्र
२. कुलिकस्य ।। सिहणो श्रा
३. वकस्य ० ।।

इस गच्छ के विभिन्न मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित बड़ी संख्या में सलेख जिनप्रतिमायें प्राप्त होती हैं जो वि० सं० १०८८ से वि० सं० १५८३ तक की हैं। इनके अतिरिक्त वि० सं० १६१७ और वि० सं० १७१५ की एक-एक जिन प्रतिमाओं पर भी इस गच्छ का उल्लेख मिलता है। इनका विवरण निम्नानुसार है —

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १. | १०८८ | फाल्गुन वदि ४ | वासुदेवसूरि | – | जैनमन्दिर, ओसियां | पूरनचन्द नाहर, संपा० **जैन लेख-संग्रह** भाग १, लेखांक ७६२ एवं अम्बालाल पी० शाह, **जैन-तीर्थसर्वसंग्रह,** भाग १, खण्ड १, पृ० १७४ |
| २. | १०६१ | – | – | पार्श्वनाथ की त्रितीर्थी धातुप्रतिमा का खंडित लेख | शामला पार्श्वनाथ जिनालय, राधनपुर | मुनि विशालविजय, संपा०, रा० **प्र० ले० सं०** लेखांक २ |
| ३. | १०६२ | – | – | अम्बिका की धातुप्रतिमा का लेख | महावीर जिनालय, जूनागढ़ | लक्ष्मण भोजक 'जूनागढनी अम्बिकानी धातुप्रतिमानो लेख' Aspects of Jainology, Vol. II, Gujarati Section, p. 179 |
| ४. | ११६१ | माघ ११ | विजयतुंगसूरि | पंचतीर्थी जिन प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख | सुविधिनाथ जिनालय, घोघा, काठियावाड़ | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १७६७ |
| ५. | १२०१ | – | मानतुंगाचार्य-संतानीय | पार्श्वनाथ की धातुप्रतिमा का लेख | जैन मन्दिर, झुंडाल | मुनि बुद्धिसागर, संपा०, **जैन-धातुप्रतिमालेखसंग्रह** भाग १, लेखांक ७७४ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ६. | १२४० | — | विजयदेवसूरि-संतानीय | अरिष्टनेमि की धातु-प्रतिमा का लेख | महावीर जिनालय तंबोलीशेरी, राधनपुर | मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखांक २२ |
| ७. | १२४७ | वैशाख... ... | विजयसिंहसूरि | चौबीसी जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख | सुपार्श्वनाथ जिनालय, जैसलमेर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखांक २१७६ |
| ८. | १२६२ | ज्येष्ठ सुदि १० शनिवार | वर्धमानसूरि | चतुर्विंशतिपट्ट पर उत्कीर्ण लेख | पार्श्वनाथ जिनालय, करेड़ा | वही, भाग २, लेखांक १६२० |
| ९. | १२८७ | फाल्गुन वदि ३ रविवार | विजयसेनसूरि | प्रशस्ति लेख | लूणवसही, आबू | मुनि जयन्तविजय, संपा०, **अर्बुदप्राचीनजैनलेखसंदोह,** लेखांक २५० |
| १०. | १२८७ | " | महेन्द्रसूरि संतानीय शान्तिसूरि आनन्दसूरि हरिभद्रसूरि विजयसेनसूरि | प्रशस्ति लेख | वही | वही, लेखांक २५१ एवं जिनविजय, संपा०, **प्राचीनजैन लेखसंग्रह,** भाग २, लेखांक ६६ |
| ११. | १२८८ | फाल्गुन सुदि १० बुधवार | " | " | नेमिनाथ प्रासाद गिरनार | मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ३८-४२ |
| १२. | १२८८ | " | उदयप्रभसूरि | " | " | वही, लेखांक ४३ |

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनिका नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १३. | १२६३ | चैत्र वदि ८ शुक्रवार | विजयसेनसूरि | देवकुलिका का लेख, लूणवसही | लूणवसही, आबू | मुनि जयन्तविजय, पूर्वोक्त, लेखांक ३२५ |
| १४. | १२६३ | " | " | " | " | वहीं, लेखांक २८६ |
| १५. | १२६३ | वैशाख सुदि १५ शनिवार | " | नेमिनाथ की देव-कुलिका का लेख | " | वही, लेखांक ३१३ |
| १६. | १२६३ | " | " | पार्श्वनाथ की देव-कुलिका का लेख | " | वही, लेखांक २७६ |
| १७. | १२६३ | मार्ग (मार्गशीर्ष ?) सुदि १० | " | अभिनन्दनस्वामी की प्रतिमा का लेख | " | वही, लेखांक ३५३ |
| १८. | १२६५ | वैशाख सुदि १२ | " | पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | शांतिनाथ जिनालय, रतलाम | विनयसागर, संपा०, **प्रतिष्ठा-लेख संग्रह,** लेखांक ५८ |
| १९. | १२६६ | वैशाख सुदि ३ | " | आदिनाथ देवकुलिका, नन्दीश्वर चैत्य | नन्दीश्वर चैत्य, लूणवसही, आबू | मुनि जयन्तविजय, पूर्वोक्त, लेखांक ३५२ |
| २०. | १२६८ | भाद्रपद सुदि १ गुरुवार | विजयसिंहसूरि के श्रावक | श्रेयांसनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | पोसीना पार्श्वनाथ देरासर, ईडर | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक १४८३ |
| २१. | १२६८ | फाल्गुन वदि १४ रविवार | विजयसेनसूरि | शिलालेख | जैन मन्दिर, शत्रुंजय ( वर्तमान में लेख का | U. P. Shah "A Documentary Epigraph From the |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | पता नहीं चलता ) | Mount Shatrunjaya" *Journal of Asiatic Society of Bombay*, Vol. 30, Part 1, Bombay 1955 A. D. pp. 100-113. |
| २२. | १३०२ | वैशाख सुदि १० | विजयसेनसूरि के शिष्य , यशो ( ? ) सूरि | पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | पोसीना पार्श्वनाथ देरासर, ईडर | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक १४७६ |
| २३. | १३०५ | ज्येष्ठ वदि ८ शनिवार | वीरसूरि के संतानीय विजयसिंह सूरि के शिष्य वर्धमानसूरि | शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख | अजाहरा पार्श्वनाथ जिनालय के निकट भूमि से प्राप्त प्रतिमा | शिवनारायण पाण्डेय "श्री अजाहरा पार्श्वनाथ जैन तीर्थ थीमणी आवेला अमुक शिल्पो" **स्वाध्याय**, जिल्द ७, अंक १, पृ० ४५-४७ |
| २४. | १३०५ | ज्येष्ठ सुदि ७ | विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि | — | जैनदेरासर, सौदागर पोल, अहमदाबाद | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ७८८ |
| २५. | १३१४ | वैशाख वदि १३ | पजूनसूरि के संतानीय श्रावक | आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | मनमोहन पार्श्वनाथ जिनालय, चौकसी पोल, खंभात | वही, भाग २, लेखांक ८२३ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रम संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| २६. १३३० | वैशाख सुदि १५ | उदयप्रभसूरि | प्रशस्तिलेख | नेमिनाथ जिनालय, गिरनार | आचार्य गिरजाशंकर वल्लभजी, संपा०, **गुजरातना ऐतिहासिक लेखो,** भाग ३, पृ० २१० |
| २७. १३३८ | ज्येष्ठ सुदि १२ बुधवार | उदयप्रभसूरि के शिष्य महेन्द्रसूरि | धातु की चौबीसी जिन-प्रतिमा का लेख | मनमोहन पार्श्वनाथ देरासर, पटोलियापोल, बड़ोदरा | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ६४ |
| २८. १३४६ | ज्येष्ठ वदि ६ बुधवार | गुणसेनसूरि संतानीय आचार्य श्री जिन...? | शारदा की पाषाण मूर्ति | मनमोहन पार्श्वनाथ जिनालय, जीरारवाडो, खंभात | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ७६० |
| २९. १३६१ | – | – | – | चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखांक २२४३ |
| ३०. १३८२ | वैशाख वदि ८ गुरुवार | पद्मचन्द्रसूरि | पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख | अनुपूर्ति लेख, आबू | मुनि जयन्तविजय, पूर्वोक्त, लेखांक ५५२ |
| ३१. १३८५ | ज्येष्ठ वदि ४ बुधवार | श्रीवेगाणंदसूरि | सुमतिनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख | भण्डारस्थ धातु-प्रतिमा, चिन्तामणि जी का मन्दिर, बीकानेर | अगरचन्द नाहटा, संपा०, **बीकानेरजैनलेखसंग्रह,** लेखांक ३०८ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ३२. | १३८७ | माघ सुदि ५ सोमवार | हेमचन्द्रसूरि | आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | मनमोहन पार्श्वनाथ जिनालय, पटोरियापोल, बडोदरा | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ६७ |
| २९A | १३९९ | वैशाख वदि ८ | भुवनानन्दसूरि के पट्टधर पद्मचन्द्रसूरि | धातु की चौबीसी जिन-प्रतिमा का लेख | वासुपूज्य चैत्य, थराद | दौलत सिंह लोढ़ा, संपा०, **श्रीप्रतिमालेखसंग्रह,** लेखांक ५७ |
| ३३. | १३९४ | तिथिविहीन | देवेन्द्रसूरि | आदिनाथ की धातु प्रतिमा का लेख | कुँआ वाला देरासर, ईडर | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक १४२० |
| ३४. | १४०२ | आषाढ़ सुदि २ सोमवार | विनयप्रभसूरि | विमलनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | जैनमन्दिर, अहमदाबाद | विजयधर्मसूरि, संपा०, **प्राचीन लेखसंग्रह,** लेखांक ६८ |
| ३५. | १४०५ | वैशाख सुदि ५ | रतनागरसूरि | शान्तिनाथ की प्रतिमा का लेख | शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १०४८ |
| ३६. | १४०५ | ज्येष्ठ सुदि ३ | श्रीर.... ....लसूरि | चन्द्रप्रभ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख | बड़ा मन्दिर, कनासानो पाडो, पाटण | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक २९६ |
| ३७. | १४०८ | वैशाख सुदि ५ गुरुवार | नागेन्द्रसूरि के शिष्य गुणाकरसूरि | वासुपूज्य की धातु प्रतिमा का लेख | भण्डारस्थ धातु-प्रतिमा, चिन्तामणिजी का मन्दिर, बीकानेर | नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक ४१६ |

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ३८. | १४१० | वैशाख सुदि... ... शुक्रवार | गुणाकरसूरि | — | चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखांक २२६६ |
| ३९. | १४१४ | वैशाख सुदि ११ शुक्रवार | कमलप्रभसूरि | पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख | अनुपूर्ति लेख, आबू | मुनि जयन्तविजय, पूर्वोक्त, लेखांक ५७३ |
| ४०. | १४१५ | तिथिविहीन | पद्मचन्द्रसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि | पंचतीर्थी जिनप्रतिमा का लेख | चौसठिया जी का मन्दिर, नागौर | विनयसागर, संपा०, **प्रतिष्ठा-लेखसंग्रह,** लेखांक १५१ |
| ४१. | १४१६ | फाल्गुन वदि २ बुधवार | नागेन्द्रसूरि के शिष्य गुणाकरसूरि | महावीर की प्रतिमा का लेख | वीर जिनालय, रीच रोड, अहमदाबाद | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६४२ |
| ४२. | १४२१ | वैशाख वदि ५ शनिवार | गुणाकरसूरि | " | " | वही, भाग १, लेखांक ६७५ |
| ४३. | १४२१ | वैशाख सुदि ५ शनिवार | " | पार्श्वनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | वासुपूज्य चैत्य, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक ६ |
| ४४. | १४२१ | तिथिविहीन | " | वासुपूज्य की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | बालावसही, शत्रुंजय | मुनि कान्तिसागर, **शत्रुंजय वैभव,** लेखांक ४१ |
| ४५. | १४२२ | वैशाख सुदि ११ बुधवार | रत्नप्रभसूरि | पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख | शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १०५३ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ४६. | १४३३ | वैशाख सुदि ६ | गुणाकरसूरि | आदिनाथ की धातुप्रतिमा का लेख | गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालय, देरापोल, बाबाजीपुरा, बड़ोदरा | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक २१२ |
| ४७. | १४३६ | वैशाख सुदि ३ रविवार | " | पद्मप्रभ की धातु प्रतिमा का लेख | सीमंधरस्वामी का देरासर, अहमदाबाद | वही, भाग १, लेखांक ११८६ |
| ४८. | १४३७. | वैशाख वदि ११ सोमवार | रत्नप्रभसूरि के उपदेश से प्रतिमा की प्रतिष्ठा | पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी जिनप्रतिमा का लेख | सुपार्श्वनाथ का पंचायती बड़ा मन्दिर, जयपुर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ११३६ |
| ४९. | १४३७ | माघ सुदि २ | पजूनसूरि | " | बड़ा जैन मन्दिर, कनासानो पाडो, पाटण | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ३३८ |
| ५०. | १४४१ | फाल्गुन सुदि १० सोमवार | गुणाकरसूरि | " | चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय, किशनगढ़ | विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक १६७ |
| ५१. | १४४६ | वैशाख वदि ३ सोमवार | रत्नप्रभसूरि | अजितनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | प्रेमचन्द मोदी की टोंक, शत्रुंजय | नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६८६ |
| ५२. | १४४७ | फाल्गुन सुदि ८ सोमवार | रत्नाकरसूरि के पट्टधर रत्नप्रभसूरि | पद्मप्रभ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | बडा जैन मन्दिर, कनासानो पाडो, पाटण | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ३५६ |

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ५३. | १४४६ | वैशाख सुदि ३ सोमवार | उदयदेवसूरि | संभवनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | भण्डारस्थ धातु-प्रतिमा, चिन्तामणि जी का मन्दिर, बीकानेर | नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक ११२४ एवं विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ६२ |
| ५४. | १४५० | मार्गसिर वदि ६ रविवार | रत्नसिंहसूरि के पट्टधर देवगुप्तसूरि | वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख | शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १०५८ |
| ५५. | १४५० | फाल्गुन वदि २ | रत्नशेषसूरि के पट्टधर देवप्रभसूरि | " | " | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ६३ |
| ५६. | १४५२ | वैशाख सुदि ६ शुक्रवार | उदयदेवसूरि | सुमतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | घरदेरासर, बड़ोदरा | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक २४५ |
| ५७. | १४५३ | वैशाख सुदि ५ सोमवार | " | आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, डोसी की पोल, राधनपुर | मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखांक ८५ |
| ५८. | १४५६ | ज्येष्ठ सुदि ७ सोमवार | रत्नसूरि | वासुपूज्य की धातु की प्रतिमा का लेख | शीतलानाथ जिनालय, कुम्भारवाडो, खंभात | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ६५२ |
| ५९. | १४५७ | वैशाख सुदि १३ शनिवार | रत्नप्रभसूरि | " | वालावसही, शत्रुंजय | मुनि कान्तिसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ५२ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ६०. | १४६१ | ज्येष्ठ सुदि १० शुक्रवार | शान्तिसूरि | नमिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | प्राचीन जैन मंदिर लिंबडी | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ६६ |
| ६१. | १४६५ | वैशाख सुदि ३ गुरुवार | रत्नसिंहसूरि | संभवनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | आदिनाथ चैत्य, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक १८३ |
| ६२. | १४६६ | तिथिविहीन | सिंहसूरि | अभिनन्दनस्वामी की प्रतिमा का लेख | बालावसही, शत्रुंजय | मुनि कान्तिसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ५७ |
| ६३. | १४७२ | ज्येष्ठ वदि ११ सोमवार | रत्नसिंहसूरि | शान्तिनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख | मोटीपावड चैत्य, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक ३६६ |
| ६४. | १४७४ | माघ सुदि ७ शुक्रवार | सिंहदत्तसूरि | मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख | शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १०६५ |
| ६५. | १४८३ | वैशाख सुदि ३ शनिवार | गुणसागरसूरि | संभवनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | सीमंधरस्वामी का मन्दिर, खारवाडो, खंभात | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १०५६ |
| ६६. | १४८३ | तिथिविहीन | रत्नप्रभसूरि के पट्टधर सह (सिंह) दत्तसूरि | शान्तिनाथ की प्रतिमा का लेख | घरदेरासर, दिल्ली | नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ५२१ |
| ६७. | १४८४ | ज्येष्ठ सुदि ५ बुधवार | पद्माणंदसूरि | संभवनाथ की प्रतिमा का लेख | शीतलनाथ, जिनालय, उदयपुर | वही, भाग २, लेखांक १०७३ |

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ६८. | १४८५ | वैशाख सुदि ६ रविवार | गुणसागरसूरि | वासुपुज्य की धातु प्रतिमा का लेख | जैनमन्दिर, सादरा | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६१० |
| ६९. | १४८६ | वैशाख सुदि १० बुधवार | पद्माणंदसूरि | सुमतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | नवखंडापार्श्वनाथ देरासर, गोधा | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक १३७ |
| ७०. | १४८९ | ज्येष्ठ सुदि १२ शनिवार | उदयदेवसूरि के पट्टधर गुणसागरसूरि | धर्मनाथ की धातु प्रतिमा का लेख | बड़ाजैन मन्दिर, कातरग्राम | वहीं, लेखांक १४५ |
| ७१. | १४९२ | वैशाख सुदि ३ गुरुवार | गुणसागरसूरि के पट्टधर गुणसमुद्रसूरि | सुविधिनाथ की धातु प्रतिमा का लेख | जैन मन्दिर, डभोई | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग१, लेखांक ५ |
| ७२. | १४९७ | ज्येष्ठ सुदि २ सोमवार | पद्माणंदसूरि | " | चौमुख शान्तिनाथ देरासर, अहमदाबाद | वही, भाग १, लेखांक ८९८ |
| ७३. | १४९७ | " | " | संभवनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात | वही, भाग २, लेखांक ५५८ |
| ७४. | १४९९ | माघ वदि ५ रविवार | " | सुमतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात | वही, भाग २, लेखांक ६३८ |
| ७५. | १४९९ | माघ सुदि १० शुक्रवार | गुणसमुद्रसूरि | संभवनाथ की धातु प्रतिमा का लेख | महावीर जिनालय, बीकानेर | नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक १३२७ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ७६. | १४६६ | तिथिविहीन | गुणंसमुद्रसूरि | सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख | पार्श्वनाथ जिनालय, ग्वालियर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १३६८ |
| ७७. | १५०१ | पौष वदि ६ शुक्रवार | पद्मणंदसूरि के पट्टधर विनयप्रभसूरि | सुमतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | आदिनाथ चैत्य, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक ६६ |
| ७८. | १५०३ | ज्येष्ठ सुदि ७ सोमवार | गुणसागरसूरि के शिष्य गुणसमुद्रसूरि | मुनि सुव्रत की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | विमलनाथ जिनालय, सवाई माधेपुर | विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ३६६ |
| ७६. | १५०५ | वैशाख सुदि ३ सोमवार | " | सुमतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | भण्डारस्थ जिनप्रतिमा, चिन्तामणि जी का मन्दिर, बीकानेर | नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक ८८६ |
| ८०. | १५०५ | आषाढ़ सुदि ६ रविवार | " | शान्तिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | महावीर जिनालय, बीकानेर | वही, लेखांक १२५५ |
| ८१. | १५०५ | पौष वदि ७ गुरुवार | " | शीतलनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालय, गौड़ी जी की खड़की, राधनपुर | मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखांक १४६ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रम संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| ८२. १५०५ | पौष वदि ७ गुरुवार | गुणसागर सूरि के शिष्य गुणसमुद्रसूरि | नमिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | भण्डारस्थ जिनप्रतिमा, चिन्तामणि जी का मन्दिर, बीकानेर | नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक ८६१ |
| ८३. १५०५ | माघ सुदि १० रविवार | पद्माणंदसूरि के पट्टधर विनयप्रभसूरि | धर्मनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | जगवल्लभपार्श्वनाथ देरासर, नीशापोल, अहमदाबाद | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ११६६ |
| ८४. १५०७ | माघ सुदि १० सोमवार | " | कुंथुनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | आदिनाथ चैत्य, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक १६७ |
| ८५. १५०७ | माघ सुदि ११ | गुणसमुद्रसूरि | विमलनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | नेमिनाथ जिनालय, घोघा | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक २२७ |
| ८६. १५१० | फाल्गुन वदि १० शुक्रवार | " | " | जैन मन्दिर, सूरत | वही, लेखांक २६२ |
| ८७. १५१० | फाल्गुन सुदि ३ गुरुवार | " | कुंथुनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख | लुआणा चैत्य, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक ३६५ |
| ८८. १५११ | कार्तिक वदि ५ रविवार | विज(न)यप्रभसूरि | कुंथुनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | संभवनाथ देरासर, झवेरीवाड़, अहमदाबाद | मुनि बुद्धिसागर, भाग १, लेखांक ८२२ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ८६. | १५१२ | ज्येष्ठ सुदि ५ रविवार | विनयप्रभसूरि | संभवनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | धर्मनाथ, जिनालय डभोई | वही, भाग १, लेखांक ५५ |
| ६०. | १५१३ | पौष वदि ५ रविवार | पद्माणंदसूरि के पट्टधर विनयप्रभसूरि | सुविधिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | पार्श्वनाथ जिनालय मांडल | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक २८३ |
| ६१. | १५१३ | " | " | सुमतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | पार्श्वनाथ देरासर, देवसानो पाडो, अहमदाबाद | बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ११०३ |
| ६२. | १५१३ | " | " | श्रेयांसनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | " | वही, भाग १, लेखांक ६११ |
| ६३. | १५१३ | माघ सुदि ५ रविवार | गुणसमुद्रसूरि | शांतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | संभवनाथ देरासर, झवेरीवाड़, अहमदाबाद | वही, भाग १, लेखांक ८३३ |
| ६४. | १५१४ | वैशाख सुदि ५ गुरुवार | गुणसागरसूरि के पट्टधर गुणसमुद्रसूरि | पद्मप्रभ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख | शांतिनाथ जिनालय, घोघा | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक २६६ |
| ६५. | १५१५ | माघ सुदि १ शुक्रवार | विनयप्रभसूरि | धर्मनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | जैन मन्दिर, चेलपुरी, दिल्ली | नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ४८१ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रम | संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ९६ | १५१६ | फाल्गुन सुदि ३ शुक्रवार | " | सुविधिनाथ की धातु प्रतिमा का लेख | पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ६७० |
| ९७. | १५१७ | फाल्गुन सुदि ६ गुरुवार | गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर गुणदेवसूरि | संभवनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख | जैन मंदिर, चीराखाना, दिल्ली | नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ५१० |
| ९८. | १५१८ | ज्येष्ठ सुदि २ शनिवार | गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर श्री... ... ? | अभिनन्दनस्वामी की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख | जैन देरासर, पामोल | बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६४७ |
| ९९. | १५१९ | वैशाख वदि ११ शुक्रवार | गुणसमुद्रसूरि | संभवनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | आदिनाथ जिनालय, जामनगर | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ३३४ |
| १००. | १५१९ | ज्येष्ठ वदि २ सोमवार | गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर गुणदेवसूरि | चन्द्रप्रभ की धातु-प्रतिमा का लेख | पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ६५० |
| १०१. | १५१९ | कार्तिक वदि १ सोमवार | गुणसमुद्रसूरि | अरनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | बड़ा जैन मन्दिर, कातरग्राम | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ३२८ |
| १०२. | १५२० | वैशाख वदि ५ शुक्रवार | गुणसमुद्रसूरि एवं सर्वसूरि | शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | महावीर जिनालय, डीसा | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक २१०३ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org



| क्रम संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| १०३. १५२० | वैशाख सुदि ५ गुरुवार | गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर गुणदेवसूरि | सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख | शांतिनाथ जिनालय, शांतिनाथ पोल, अहमदाबाद | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक १२७२ |
| १०४. १५२० | माघ वदि ११ बुधवार | भवानन्दसूरि के शिष्य पद्मचन्द्रसूरि | महावीर स्वामी की धातु-प्रतिमा का लेख | आदिनाथ जिनालय, जामनगर | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ३४३ |
| १०५. १५२२ | माघ सुदि ५ सोमवार | विनयप्रभसूरि | शांतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | जैन मन्दिर, डभोई | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक १८ |
| १०६. १५२५ | चैत्र वदि ३ गुरुवार | गुणदेवसूरि | पार्श्वनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | आदिनाथ जिनालय, जामनगर | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ३६५ |
| १०७. १५२५ | ज्येष्ठ वदि १ शुक्रवार | कमलचन्द्रसूरि के पट्टधर हेमरत्नसूरि | आदिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | शांतिनाथ देरासर, जामनगर | वही, लेखांक ३६६ |
| १०८. १५२५ | आषाढ़ सुदि ३ सोमवार | गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर गुणदेवसूरि | जीवितस्वामी की धातु-प्रतिमा का लेख | शांतिनाथ देरासर, राधनपुर | वही, लेखांक ४०० |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



| क्रम संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| १०६. १५२५ | माघ सुदि ५ गुरुवार | " | श्रेयांसनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | संभवनाथ देरासर, अहमदाबाद | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ८१६ |
| ११०. १५२५ | माघ सुदि ५ गुरुवार | गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर गुणदेवसूरि | धर्मनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | बड़ा जैन मन्दिर, माणसा | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ३६४ |
| १११. १५२७ | वैशाख वदि ५ गुरुवार | " | श्रेयांसनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | नवखंडा पार्श्वनाथ, जिनालय, भोयरापाडो, खंभात | वही, भाग २, लेखांक ८७० |
| ११२. १५२७ | पौष वदि ५ शुक्रवार | " | आदिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | बावन जिनालय, पेथापुर | वही, भाग १, लेखांक ७०३ |
| ११३. १५२७ | " | कमलचन्द्रसूरि के पट्टधर हेमरत्नसूरि | नमिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | जैन मन्दिर, लिंबडीपाडा, पाटण | वही, भाग १, लेखांक २६० |
| ११४. १५२७ | माघ वदि ५ गुरुवार | कमलचन्द्रसूरि | वासुपूज्य की धातु-प्रतिमा का लेख | प्राचीन जैन मन्दिर, लिंबडी | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ४०७ |
| ११५. १५२७ | माघ वदि ५ शुक्रवार | विनयप्रभसूरि एवं सोमरत्नसूरि | संभवनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | भण्डारस्थ धातुप्रतिमा, चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर | नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक १०५३ |

| क्रम संवत् | | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ११६. | १५२७ | " | पद्माणंदसूरि के संतानीय विजयप्रभसूरि के पट्टधर हेमरत्नसूरि | कुंथुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | माणिकसागर जी का मन्दिर, कोटा | विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ६६६ |
| ११७. | १५२६ | ज्येष्ठ सुदि ५ मंगलवार | कमलप्रभसूरि के पट्टधर हेमरत्नसूरि | चन्द्रप्रभ की धातु-प्रतिमा का लेख | पद्मप्रभ जिनालय, साणंद | बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६२६ |
| ११८. | १५२६ | माघ सुदि ५ रविवार | सोमरत्नसूरि | नेमिनाथ की प्रतिमा का लेख | नौलखा पार्श्वनाथ जिनालय, पाली | नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ८१६ |
| ११९. | १५३१ | वैशाख सुदि ३ शनिवार | कमलचन्द्रसूरि के पट्टधर हेमरत्नसूरि | सुमतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | सीमंधर स्वामी का मन्दिर, खारवाडो, खंभात | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १०७१ |
| १२०. | १५३१ | " | " | वासुपूज्य की धातु-प्रतिमा का लेख | आदिनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात | वही, भाग २, लेखांक १००२ |
| १२१. | १५३१. | " | " | शीतलनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | शांतिनाथ जिनालय चौकसी पोल, खंभात | वही, भाग २, लेखांक ८३१ |
| १२२. | १५३१ | मितिविहीन | पद्मचन्द्रसूरि | — | सुमतिनाथमुख्य बावन-जिनालय, मातर | वही, भाग २, लेखांक ५११ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| क्रम संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| १२३. १५३३ | चैत्र वदि २ गुरुवार | विनयप्रभसूरि के पट्टधर सोमरत्नसूरि | चन्द्रप्रभ की धातुप्रतिमा का लेख | कुंआ वाला देरासर, ईडर | वही, भाग १, लेखांक १४४३ |
| १२४. १५३३ | वैशाख सुदि ६ शुक्रवार | गुणदेवसूरि | सुविधिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | बड़ा जैन मन्दिर, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक २१५ |
| १२५. १५३३ | " | " | " | वासुदेव चैत्य, थराद | वही, लेखांक ३६ |
| १२६. १५३३ | " | " | सुमतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | आदिनाथ जिनालय, कसैरीगली, उदयपुर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २ लेखांक १८६४ |
| १२७. १५३६ | आषाढ़ सुदि २ रविवार | हेमरत्नसूरि | श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख | मोतीशाह की टूंक, शत्रुंजय | मुनि कांतिसागर, पूर्वोक्त, लेखांक २२० |
| १२८. १५४४ | वैशाख वदि ५ गुरुवार | " | सुमतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | आदिनाथ जिनालय, जामनगर | विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ४६१ |
| १२९. १५४६ | वैशाख सुदि ३ गुरुवार | सुणादेवसूरि | संभवनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | वीर जिनालय, अहमदाबाद | बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ८७३ |
| १३०. १५५५ | माघ सुदि ६ सोमवार | हेमहंससूरि | धर्मनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | सुमतिनाथ जिनालय, जयपुर | विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ८८३ |
| १३१. १५५८ | कार्तिक वदि ५ रविवार | कमलचन्द्रसूरि के पट्टधर हेमरत्नसूरि | शीतलनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | संभवनाथ जिनालय, फूलवाली गली, लखनऊ | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १६०५ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



| क्रम संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| १३२. १५६० | वैशाख सुदि ३ बुधवार | सोमरत्नसूरि के पट्टधर हेमसिंहसूरि | शांतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | वीरचैत्य, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक १२२ |
| १३३. १५६० | " | " | मुनि सुव्रत की धातु-प्रतिमा का लेख | वीर जिनालय, रीज रोड, अहमदाबाद | बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६८८ |
| १३४. १५६३ | वैशाख वदि ११ शुक्रवार | श्रीरत्नसूरि | पार्श्वनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | शान्तिनाथ जिनालय, नदियाड | वही, भाग २, लेखांक ३७८ |
| १३५. १५६६ | फाल्गुन सुदि ३ सोमवार | हेमहंससूरि | आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | चिन्तामणि जिनालय, किशनगढ़ | विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ६३१ |
| १३६. १५६८ | वैशाख वदि ३ गुरुवार | हेमसिंहसूरि | सुमतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | पार्श्वनाथ जिनालय, अहमदाबाद | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६१८ |
| १३७. १५७० | वैशाख सुदि १३ मंगलवार | " | कुंथुनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | शांतिनाथ जिनालय, वीसनगर | वही, भाग १, लेखांक ५१५ |
| १३८. १५७० | माघ सुदि १३ बुधवार | " | आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | गुलाबचंद ढढ्ढा का देरासर, जयपुर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १२१३ एवं विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ६४६ |
| १३९. १५७१ | वैशाख वदि १३ शुक्रवार | गुणरत्नसूरि | चन्द्रप्रभ की धातु-प्रतिमा का लेख | पार्श्वनाथ जिनालय, लोद्रवा, जैसलमेर | नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखांक २५५१ |

| क्रम संवत् | तिथि/मिति | आचार्य या मुनि का नाम | लेख का स्वरूप | प्रतिष्ठा-स्थान | संदर्भग्रन्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| १४०. १५७१ | वैशाख सुदि ५ गुरुवार | महीरत्नसूरि | आदिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | अरनाथ जिनालय, जीरारवाडो, खंभात | बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ७७० |
| १४१. १५७२ | वैशाख वदि... ... सोमवार | गुणरत्नसूरि के पट्टधर गुणवर्धनसूरि | संभवनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख | बालावसही, शत्रुंजय | मुनि कांतिसागर, पूर्वोक्त, लेखांक २६६ |
| १४२. १५७२ | वैशाख सुदि ५ सोमवार | — | वासुपूज्य की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख | बड़ा जैन मन्दिर, नागौर | विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ६५१ |
| १४३. १५७२ | वैशाख सुदि १३ सोमवार | गुणरत्नसूरि के पट्टधर गुणवर्धनसूरि | संभवनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख | गांव का बड़ा जैन मन्दिर, पालिताना | नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६७७ |
| १४४. १५७२ | — | — | वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख | आदिनाथ जिनालय, नागौर | वही, भाग २, लेखांक १३०१ |
| १४५. १५७३ | माघ वदि २ रविवार | हेमसिंहसूरि | कुंथुनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख | अजितनाथ जिनालय, कोचरों का चौक, बीकानेर | नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक १५६० |
| १४६. १५८३ | वैशाख सुदि १० शुक्रवार | " | मुनिसुव्रत की धातु की प्रतिमा का लेख | वीर जिनालय, रीज रोड, अहमदाबाद | मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६६५ |
| १४७. १६१७ | ज्येष्ठ सुदि ५ | ज्ञानसूरि | विमलनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख | वीर चैत्य, थराद | लोढा, पूर्वोक्त, लेखांक २७ |
| १४८. १७१५ | तिथिविहीन | पद्मचन्द्रसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि | पंचतीर्थी जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख | आदिनाथ जिनालय, नागौर | नाहटा, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १३१२ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस गच्छ से सम्बद्ध पूर्वमध्यकाल एवं मध्यकाल के पर्याप्त संख्या में अभिलेखीय साक्ष्य मिलते हैं। इनसे इस गच्छ के विभिन्न मुनिजनों के नाम ज्ञात होते हैं, परन्तु उनमें से कुछ के पूर्वापर सम्बन्ध ही स्थापित हो सके हैं, जो निम्नानुसार हैं :

**भुवनानन्दसूरि के पट्टधर पद्मचन्द्रसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १३६६ वैशाख वदि ८ | श्री० प्र० ले० सं० | लेखांक ५८ |

**पद्मचन्द्रसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १४१५ ..... | प्र० ले० सं० | लेखांक १५१ |

**रत्नाकरसूरि के पट्टधर रत्नप्रभसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १४२२ वैशाख सुदि ११ बुधवार | जै० ले० सं०, भाग २ | लेखांक १०५३ |
| वि० सं० १४४६ वैशाख वदि ३ सोमवार | वही, भाग १ | लेखांक ६८६ |
| वि० सं० १४४७ फाल्गुन सुदि ८ सोमवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ३५६ |

**रत्नप्रभसूरि के पट्टधर सिंहदत्तसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १४६६ ..... | श० वै० | लेखांक ५७ |
| वि० सं० १४७४ माघ सुदि ७ शुक्रवार | जै० ले० सं०, भाग २ | लेखांक १०६५ |
| वि० सं० १४८३ ..... | वही, भाग १ | लेखांक ५२१ |

**उदयदेव सूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १४४६ वैशाख सुदि ३ सोमवार | वही, भाग २ | लेखांक ११२४ |
| वि० सं० १४५३ वैशाख सुदि ५ सोमवार | रा० प्र० ले० सं० | लेखांक ८५ |

**उदयदेवसूरि के पट्टधर गुणसागरसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १४८३ वैशाख सुदि ३ शनिवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग २ | लेखांक १०५६ |
| वि० सं० १४८५ वैशाख सुदि ६ रविवार | वही, भाग १ | लेखांक ६१० |
| वि० सं० १४८६ ज्येष्ठ सुदि १२ शनिवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक १४५ |

**गुणसागरसूरि के पट्टधर गुणसमुद्रसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १४६२ वैशाख सुदि ३ गुरुवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ५ |
| वि० सं० १४६६ माघ सुदि ५ गुरुवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक १७५ |
| वि० सं० १४६६ माघ सुदि १० | बी० जै० ले० सं० | लेखांक १३२७ |
| वि० सं० १४६६ मितिविहीन | जै० ले० सं०, भाग २ | लेखांक १३६८ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| | | | |
|---|---|---|---|
| वि० सं० १५०३ | ज्येष्ठ सुदि ७ सोमवार | प्र० ले० सं० | लेखांक ३६६ |
| वि० सं० १५०५ | वैशाख सुदि ३ सोमवार | बी० जै० ले० सं० | लेखांक ८८६ |
| वि० सं० १५०५ | आषाढ सुदि ६ रविवार | वही | लेखांक १२५५ |
| वि० सं० १५०५ | पौष वदि ७ गुरुवार | रा० प्र० ले० सं० | लेखांक १४६ |
| वि० सं० १५०५ | पौष वदि गुरुवार | बी० जै० ले० सं० | लेखांक ८६१ |
| वि० सं० १५०५ | माघ सुदि ११ बुधवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक २२१ |
| वि० सं० १५१० | फाल्गुन वदि १० शुक्रवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक २६२ |
| वि० सं० १५१० | फाल्गुन सुदि ३ गुरुवार | श्री० प्र० ले० सं० | लेखांक ३६५ |
| वि० सं० १५१३ | माघ सुदि ५ रविवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ८३३ |
| वि० सं० १५१४ | वैशाख सुदि ५ गुरुवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक २६६ |
| वि० सं० १५१६ | वैशाख वदि ११ शुक्रवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक ३३४ |
| वि० सं० १५१६ | कार्तिक वदि १ सोमवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक ३२८ |

**गुणसमुद्रसूरि के प्रथम पट्टधर गुणदत्तसूरि**

| | | | |
|---|---|---|---|
| वि० सं० १५२३ | वैशाख सुदि ३ गुरुवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक १०१८ |

**गुणसमुद्रसूरि के द्वितीय पट्टधर गुणदेवसूरि**

| | | | |
|---|---|---|---|
| वि० सं० १५१७ | फाल्गुन सुदि ६ गुरुवार | जै० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ५१० |
| वि० सं० १५१६ | ज्येष्ठ वदि २ सोमवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग २ | लेखांक ६५० |
| वि० सं० १५२० | वैशाख सुदि ५ गुरुवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक १२७२ |
| वि० सं० १५२५ | चैत्र वदि ३ गुरुवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक ३६५ |
| वि० सं० १५२५ | आषाढ़ सुदि ३ सोमवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक ४०० |
| वि० सं० १५२५ | माघ सुदि ५ गुरुवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ८१६ |
| वि० सं० १५२७ | वैशाख सुदि ५ गुरुवार | वही, भाग २ | लेखांक ८७० |
| वि० सं० १५२७ | पौष वदि ५ शुक्रवार | वही, भाग १ | लेखांक ७०३ |
| वि० सं० १५३३ | वैशाख सुदि ६ शुक्रवार | श्री० प्र० ले० सं० | लेखांक २१५ |
| वि० सं० १५३५ | वैशाख वदि ७ सोमवार | जै० ले० सं०, भाग ३ | लेखांक २३५५ |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**परमाणंदसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १४८४ ज्येष्ठ सुदि ४ बुधवार | जै० ले० सं०, भाग २ | लेखांक १०७३ |
| वि० सं० १४८६ वैशाख सुदि १० बुधवार | प्रा० ले० सं० | लेखांक १३७ |
| वि० सं० १४९७ ज्येष्ठ सुदि २ सोमवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ८६८ |
| वि० सं० १४९६ माघ वदि ५ रविवार | वही, भाग २ | लेखांक ६३८ |

**परमाणंदसूरि के शिष्य विनयप्रभसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १५०१ पौष वदि ६ शुक्रवार | श्री० प्र० ले० सं० | लेखांक ६६ |
| वि० सं० १५०५ माघ सुदि १० रविवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ११६६ |
| वि० सं० १५०७ माघ सुदि १० सोमवार | श्री० प्र० ले० सं० | लेखांक १६७ |
| वि० सं० १५११ कार्तिक वदि ५ रविवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ८२२ |
| वि० सं० १५१२ ज्येष्ठ सुदि ५ रविवार | वही, भाग १ | लेखांक ५५ |
| वि० सं० १५१३ वैशाख वदि २ शुक्रवार | वही, भाग १ | लेखांक १२२ |
| वि० सं० १५१५ माघ सुदि १ शुक्रवार | जै० ले० सं० | लेखांक ४८१ |
| वि० सं० १५१७ फाल्गुन सुदि ३ शुक्रवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग २ | लेखांक ६७० |

**विनयप्रभसूरि के शिष्य सोमरत्नसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १५२७ माघ वदि ५ शुक्रवार | बी० जै० ले० सं० | लेखांक १०५३ |
| वि० सं० १५२६ माघ सुदि ५ रविवार | जै० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ८१६ |

**विनयप्रभसूरि के पट्टधर क्षेमरत्नसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १५२७ माघ वदि ५ शुक्रवार | प्र० ले० सं० | लेखांक ६६६ |

**सोमरत्नसूरि के शिष्य हेमसिंहसूरि**

| | | |
|---|---|---|
| वि० सं० १५६० वैशाख सुदि ३ बुधवार | श्री० प्र० ले० सं० | लेखांक १२२ |
| वि० सं० १५७० माघ सुदि १३ मंगलवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ५१५ |
| वि० सं० १५७३ माघ वदि २ रविवार | बी० जै० ले० सं० | लेखांक १५६० |
| वि० सं० १५८३ वैशाख सुदि १० शुक्रवार | जै० धा० प्र० ले० सं०, भाग १ | लेखांक ६६५ |

उक्त अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर नागेन्द्रगच्छीय मुनिजनों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु- परम्परा की तीन अलग-अलग तालिकायें संगठित की जा सकती हैं, जो निम्नानुसार हैं :

**तालिका : १**

?

भुवनानन्दसूरि

पद्मचन्द्रसूरि ( वि० सं० १३६६ )

रत्नाकरसूरि ( वि० सं० १४१५ )

रत्नप्रभसूरि ( वि० सं० १४२२-१४४७ )

सिंहदत्तसूरि ( वि० सं० १४६६-१४८३ )

**तालिका : २**

?

उदयदेवसूरि ( वि० सं० १४४६-१४५३ )

गुणसागरसूरि ( वि० सं० १४८३-१४८५-१४८६ )

गुणसमुद्रसूरि ( वि० सं० १४६२-१५१६ )

गुणदत्तसूरि ( वि० सं० १५२३ ) गुणदेवसूरि ( वि० सं० १५१७-१५३५ )

**तालिका : ३**

?

पद्माणंदसूरि ( वि० सं० १४८४-१४६६ )

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनयप्रभसूरि ( वि० सं० १५०१-१५१७ )

क्षेमरत्नसूरि ( वि० सं० १५२७ ) सोमरत्नसूरि ( वि० सं० १५२७-१५२६ )

हेमसिंहसूरि ( वि० सं० १५६०-१५८३ )

जैसा कि इसी निबन्ध में साहित्यिक साक्ष्यों के अन्तर्गत हम देख चुके हैं इस गच्छ के १६ वीं शताब्दि के तीन ग्रन्थकारों – गुणरत्नसूरि और ज्ञानसागर सूरि ने अपने गुरु तथा सोमरत्नसूरि ने प्रगुरु के रूप में गुणदेवसूरि का उल्लेख किया है। अभिलेखीय साक्ष्यों द्वारा निर्मित उपरोक्त तालिका – २ में भी गुणदेव सूरि का नाम मिलता है जिन्हें समसामयिकता और नामसाम्य के आधार पर एक ही व्यक्ति मान लेने में कोई बाधा नहीं दिखायी देती। इस प्रकार उक्त दोनों गुर्वावलियों के परस्पर समायोजन से १६वीं शती में इस गच्छ के मुनिजनों के एक शाखा की गुरु-शिष्य परम्परा का जो स्वरूप उभरता है, वह इस प्रकार है–

**तालिका : ४**

?

उदयदेवसूरि ( वि० सं० १४४६-१४५३ ) प्रतिमालेख

गुणसागरसूरि ( वि० सं० १४८३-१४८६ ) प्रतिमालेख

गुणसमुद्रसूरि ( वि० सं० १४६२-१५१६ ) प्रतिमालेख

गुणदत्तसूरि ( वि० सं० १५२३ ) प्रतिमालेख

गुणदेवसूरि ( वि० सं० १५१७-१५३५ ) प्रतिमालेख

गुणरत्नसूरि ( **ऋषभरास** एवं **बाहुबलिरास** के रचनाकार )

सोमरत्नसूरि ( वि० सं० १५२० के आसपास **कामदेवरास** के रचनाकार )

ज्ञानसागरसूरि ( वि० सं० १५२३ में **जीवभव स्थिति-रास** एवं वि० सं० १५३१ में **सिद्ध-चक्रश्रीपालचौपाई** के रचनाकार )

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस गच्छ के प्रमुख ग्रन्थकारों का विवरण निम्नानुसार है :

## गुणपाल

जैसा कि इसी निबन्ध के प्रारम्भिक पृष्ठों में हम देख चुके हैं ये वीरभद्रसूरि के प्रशिष्य और प्रद्युम्नसूरि 'द्वितीय' के शिष्य थे। इनके द्वारा रची गयी दो कृतियाँ मिलती हैं – **जंबूचरियं** और **रिसिदत्ताचरिय,** जो प्राकृत भाषा में हैं[५०]। **जंबूचरियं** में १६ उद्देश्य हैं[५१]। इसकी शैली पर हरिभद्रसूरि के **समराइच्चकहा** और उद्योतनसूरि के **कुवलयमालाकहा** ( शक सं० ७००/ई० सन् ७७८ ) का प्रभाव बतलाया जाता है[५२]। इस ग्रन्थ में भगवान महावीर के शिष्य जम्बूस्वामी का जीवनचरित्र वर्णित है। जम्बूस्वामी पर रची गयी कृतियों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। **रिसिदत्ताचरिय** की वर्तमान में दो प्रतियाँ मिलती हैं, एक पूना स्थित भण्डारकर प्राच्य विद्या संस्थान[५३] में और दूसरी जैसलमेर के ग्रन्थ भंडार[५४] में संरक्षित है, ऐसा मुनि जिनविजय जी ने उल्लेख किया है।

## शाम्बमुनि

इन्होंने चन्द्रकुल के जम्बूनाग द्वारा रचित **जिनशतक** पर वि० सं० १०२५/ई० सन् ९६९ में **पंजिका** की रचना की[५५]। इनके गुरु-शिष्य परम्परा तथा उक्त कृति के अतिरिक्त किसी अन्य रचना के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती।

## विजयसेनसूरि

मध्ययुग में नागेन्द्रगच्छ की प्रथम शाखा के आदिम आचार्य महेन्द्रसूरि की परम्परा में हुए हरिभद्रसूरि के शिष्य विजयसेनसूरि महामात्य वस्तुपाल के पितृपक्ष के कुलगुरु और प्रभावक जैनाचार्य थे। इन्हीं के उपदेश से वस्तुपाल और उसके भ्राता तेजपाल ने संघ यात्रायें की और नूतन जिनालयों के निर्माण के साथ साथ कुछ प्राचीन जिनालयों का जीर्णोद्धार भी कराया। वस्तुपाल द्वारा निर्मित उपलब्ध सभी जिनालयों में इन्हीं के करकमलों से जिन प्रतिमायें प्रतिष्ठापित की गयीं।

विजयसेनसूरि अपने समय के उद्भट विद्वान् थे । इनके द्वारा रचित **रैवंतगिरिरास**[५६] नामक एकमात्र कृति मिलती है जो अपभ्रंश भाषा में है। यह वस्तुपाल की गिरनार यात्रा के समय रची गयी। इन्होंने चन्द्रगच्छीय आचार्य बालचन्द्रसूरि द्वारा रचित **विवेकमंजरीवृत्ति** ( रचनाकाल वि० सं० की तेरहवीं शती का अंतिम चरण ) का संशोधन किया।[५७] इसी गच्छ के प्रद्युम्नसूरि ( **समरादित्यसंक्षेप** के रचनाकार ) ने इनके पास न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि विजयसेनसूरि द्वारा रचित केवल एक ही कृति मिलती है फिर भी सम्भव है कि इन्होंने कुछ अन्य रचनायें भी की होंगी, जो आज नहीं मिलतीं।

## उदयप्रभसूरि

ये विजयसेनसूरि के शिष्य और पट्टधर थे। महामात्य वस्तुपाल ने इनके शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था की थी और इनके दीक्षा-प्रसंग पर बहुत द्रव्य व्यय किया था। इनके द्वारा रची गयी कई कृतियाँ मिलती हैं, जो निम्नानुसार हैं :

१. **सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी** (रचनाकाल वि० सं० १२७७/ई० स० १२२१)
२. **स्तम्भतीर्थस्थित आदिनाथ जिनालय की १६ श्लोकों की प्रशस्ति** ( रचनाकाल वि० सं० १२८१/ई० स० १२२५ )
३. **धर्माभ्युदयमहाकाव्य** अपरनाम **संघपतिचरित्र** ( वि० सं० १२६०/ई० स० १२३४ से पूर्व )
४. **वस्तुपाल की गिरनार प्रशस्ति** ( वि० सं० १२८८/ई० स० १२३२ )
५. **उपदेशमालाटीका** ( वि० सं० १२६६ /ई० स० १२४३ )
६. **आरम्भसिद्धि** ( ज्योतिष ग्रन्थ )
७. **वस्तुपालस्तुति**

इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रद्युम्नसूरि द्वारा रचित **समरादित्यसंक्षेप** (रचनाकाल वि० सं० १३२४/ई० स० १२६८ ) का संशोधन भी किया। **सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी**[५९] १७६ श्लोकों की लम्बी प्रशस्ति है जो शत्रुंजय के आदिनाथ जिनालय में किसी शिलापट्ट पर उत्कीर्ण कराने लिये रची गयी थी। इसमें चापोत्कट ( चावड़ा ) और चौलुक्य नरेशों के विवरण के अतिरिक्त वस्तुपाल के शौर्य, उसकी तीर्थयात्राओं के विवरण के साथ-साथ उसके वंशवृक्ष, उसके मंत्रित्त्वकाल एवं उसके परिवार की प्रशंसा की गयी है। रचना के अन्तिम भाग में ग्रन्थकार ने अपने गच्छ की लम्बी गुर्वावली देते हुए अपने गुरु विजयसेनसूरि के प्रति अत्यन्त आदरभाव प्रदर्शित किया है।

**धर्माभ्युदयमहाकाव्य**[६०] १५ सर्गों में विभाजित है। इसमें कुल ५०४१ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में वस्तुपाल द्वारा की गयी संघयात्राओं को प्रसंग बनाकर धर्म के अभ्युदय का सूचन करने वाली धार्मिक कथाओं का संग्रह है। इस कृति के भी अन्त में ग्रन्थकार ने अपनी गुरु-परम्परा की लम्बी तालिका देते हुए अपने गुरु की प्रशंसा की है[६१]। यह वि० सं० १२६० से पूर्व रची गयी कृति मानी जाती है। इसकी वि० सं० १२६० की स्वयं महामात्य वस्तुपाल द्वारा लिपिबद्ध की गयी एक प्रति शान्तिनाथ ज्ञान भण्डार, खम्भात में संरक्षित है[६२]।

उदयप्रभसूरि ने वस्तुपाल द्वारा स्तम्भतीर्थ ( खंभात ) में निर्मित आदिनाथ जिनालय में उत्कीर्ण कराने हेतु **१६ श्लोकों** की एक **प्रशस्ति** की भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना की[६३]। इसका अन्तिम भाग गद्य में है। इसमें जिनालय के निर्माता और उसके कुलगुरु विजयसेनसूरि के विद्यावंशवृक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई सूचना नहीं मिलती। इन्हीं के द्वारा रचित ३३ श्लोकों की **वस्तुपालस्तुति** नामक कृति भी मिलती है जो किसी घटना विशेष के अवसर पर या किसी सुकृति की स्मृति में रची गयी प्रतीत नहीं होती बल्कि भिन्न-भिन्न अवसरों पर वस्तुपाल की प्रशंसा में रचे गये पद्यों का संकलन है। उदयप्रभसूरि द्वारा रचित **५ श्लोकों** की एक अन्य **प्रशस्ति** भी मिलती है जिसमें आदिनाथ एवं नेमिनाथ के प्रति भक्तिभाव व्यक्त करते हुए वस्तुपाल की दानशीलता, धार्मिकता आदि की चर्चा के साथ उसके दिर्घायु होने की कामना की गयी है।

वस्तुपाल द्वारा धवलक्क में निर्मित उपाश्रय में प्रवास करते हुए उदय-प्रभसूरि ने धर्मदासगणितकृत **उपदेशमाला** ( रचनाकाल प्रायः ईस्वी सन् छठीं शताब्दी का मध्य भाग ) पर वि० सं० १२६६/ई०सन् १२४३ में **कर्णिका** नामक टीका की रचना की[६५]। इसकी प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि टीकाकार ने अपने गुरु के आदेश पर इसकी रचना की। कनकप्रभसूरि के शिष्य और प्रसिद्ध ग्रन्थसंशोधक प्रद्युम्नसूरि ने इसका संशोधन किया था। उदयप्रभसूरि ने **आरम्भसिद्धि** नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ की भी रचना की। इन्हीं के द्वारा ४६ गाथाओं में रचित **शब्दब्रह्मोल्लास** नामक एक अपूर्ण ग्रन्थ भी मिलता है जो पाटण के खेतरवसही भण्डार में संरक्षित है[६६]। वस्तुपाल का गिरनार शिलालेख इन्हीं की कृति है।

## देवेन्द्रसूरि

ये मध्ययुग में नागेन्द्रगच्छ की द्वितीय शाखा के आदिम आचार्य वीरसूरि की परम्परा में हुए धनेश्वरसूरि के शिष्य और विजयसिंहसूरि के कनिष्ठ गुरुभ्राता थे। इनके द्वारा रचित एकमात्र कृति है **चन्द्रप्रभचरित**[६७], जो वि० सं० १२६४ की रचना है। संस्कृत भाषा में रचित इस ग्रन्थ में ५३२५ श्लोक हैं। इनके बारे में विशेष विवरण नहीं मिलता।

## वर्धमानसूरि

जैसा कि लेख के प्रारम्भ में हम देख चुके हैं ये वीरसूरि की परम्परा में हुए धनेश्वरसूरि के प्रशिष्य और विजयसिंहसूरि के शिष्य थे। इनके द्वारा रचित **वासुपूज्यचरित**[६८] ( रचनाकाल वि० सं० १२६६ ) १२वें तीर्थंकर पर संस्कृत भाषा में उपलब्ध एकमात्र काव्य है। इसमें ५४६४ श्लोक हैं और यह सरल भाषा में है। ग्रन्थ के अन्त में २६ श्लोकों की लम्बी प्रशस्ति[६९] के अन्तर्गत ग्रन्थकार ने अपनी विस्तृत गुर्वावली के साथ-साथ रचना-काल और रचना-स्थान का भी उल्लेख किया है जिसका इस गच्छ के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## मल्लिषेणसूरि

ये वर्धमानसूरि के प्रशिष्य और उदयप्रभसूरि के शिष्य थे। इन्होंने आचार्य हेमचन्द्रसूरि द्वारा रचित **अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका** नामक कृति पर संस्कृत भाषा में वि० सं० १३४८/ई० सन् १२९३ में **स्याद्वादमंजरी** नामक टीका की रचना की[७०], जिसका संशोधन ( खरतरगच्छीय )आचार्य जिनप्रभसूरि ने किया। पं० अम्बालाल प्रेमचन्द शाह के अनुसार इन्होंने दिगम्बराचार्य जिनसेन के शिष्य मल्लिषेण द्वारा रचित **भैरवपद्मावतीकल्प** का भी संशोधन किया । लेकिन दिगम्बराचार्य मल्लिषेण द्वारा रचित **त्रिशष्टिमहापुराण** या **महापुराण** नामक एक अन्य कृति भी मिलती है जो वि० सं० ११०४/शक सं० ९६८ में रची गयी है। अतः इनका काल विक्रम संवत् की ११वीं शती का अन्त और १२वीं शती का प्रारम्भ सुनिश्चित है। साथ ही उक्त आचार्य कर्णाटक के थे, गुजरात के नहीं । इस आधार पर शाह जी का उपरोक्त मत भ्रामक सिद्ध होता है।

**स्याद्वादमंजरी** की प्रशस्ति में इन्होंने अपने गच्छ की लम्बी गुर्वावली न देते हुए मात्र अपने गुरु उदयप्रभसूरि और ग्रन्थ के रचनाकाल का ही उल्लेख किया है[७३]। अतः वर्तमान युग के अनेक इतिहासकारों ने केवल गच्छ और नामसाम्य के आधार पर इनके गुरु उदयप्रभसूरि को वस्तुपाल–तेजपाल के गुरु विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि से अभिन्न मान लिया था[७४], परन्तु अब उक्त धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है[७५]।

## मेरुतुंगसूरि

ये नागेन्द्रगच्छीय चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य थे। इन्होंने वढवाण में रहते हुए वि० सं० १३६१/ई० सन् १३०५ में संस्कृत भाषा में **प्रबन्धचिन्तामणि** की रचना की। इस कार्य में उन्हें अपने शिष्य गुणचन्द्र गणि से सहायता प्राप्त हुई[७७]। सम्पूर्ण ग्रन्थ ५ प्रकाशों ( खण्डों ) में विभाजित है। गुजरात के इतिहास का यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। जिस प्रकार कल्हण ने **राजतरंगिणी** में काश्मीर का इतिहास लिखा है उसी प्रकार मेरुतुंग ने अपनी इस कृति में गुजरात के इतिहास का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में वि० सं० ८०२ से लेकर वि० सं० १२५० ( कुछ विद्वानों के अनुसार वि० सं० १२७७ ) तक की घटनाओं का तिथियुक्त वर्णन है किन्तु **राजतरंगिणी** की तुलना में इस ग्रन्थ में सबसे बड़ा दोष यह है कि लेखक ने अपने समय की घटनाओं का प्रत्यक्ष ज्ञान होते हुए भी उसे पूर्णरूपेण उपेक्षित कर दिया है। साथ ही इसमें विभिन्न राजाओं की दी गयी अधिकांश तिथियाँ प्रायः ठीक नहीं हैं फिर भी वे कुछ माह या वर्ष से अधिक अशुद्ध नहीं हैं। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा विस्तृत चर्चा की जा चुकी है[७८]।

श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई[७९], ए० के० मजुमदार[८०] तथा कुछ अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्वानों[१] ने **स्थविरावली** अपरनाम **विचारश्रेणी** नामक रचना को भी इसी मेरुतुंग की कृति बतलाया है। इस कृति में पट्टधर आचार्यों के साथ-साथ चावड़ा, चौलुक्य और वघेल नरेशों की तिथि सहित सूची दी गयी है जो **प्रबन्धचिन्तामणि** से भिन्न है। चूँकि एक ही ग्रन्थकार अपने दो अलग-अलग ग्रन्थों में समान घटनाओं की अलग-अलग तिथियाँ नहीं दे सकता है, अतः यह सम्भावना बलवती लगती है कि दोनों कृतियों के रचनाकार समान नाम वाले होते हुए भी अलग-अलग व्यक्ति हैं एक नहीं, जैसा कि अनेक विद्वानों ने मान लिया है। **विचारश्रेणी** में अंचलगच्छ को वीर० सं० १६३६/वि० सं० १२०६ में आर्यरक्षितसूरि से उत्पत्ति बतलायी गयी है[२]। इस गच्छ में भी मेरुतुंग नामक एक प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं जिनके द्वारा रचित विभिन्न कृतियाँ मिलती हैं और इनका काल वि० सम्वत् की १५वीं शती के प्रथम चरण से लेकर तृतीय चरण तक सुनिश्चित है[३]। इस प्रकार वे **प्रबन्धचिन्तामणि** के कर्ता से लगभग एक शताब्दी बाद के विद्वान् हैं। इस आधार पर भी यह सुनिश्चित हो जाता है कि **प्रबन्धचिन्तामणि** और **विचारश्रेणी** के रचनाकार अलग अलग व्यक्ति हैं।

नागेन्द्रगच्छीय मेरुतुंगसूरि द्वारा रचित दूसरी कृति है **महापुरुषचरित**[४]। संस्कृत भाषा में निबद्ध इस कृति में ५ सर्ग हैं जिनमें ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर इन पाँच तीर्थंकरों का वर्णन है। ग्रन्थ के मंगलाचरण में ग्रन्थकार ने अपने गुरु चन्द्रप्रभसूरि का और अन्त में प्रशस्ति के अन्तर्गत प्रथम श्लोक में अपने गच्छ का उल्लेख किया है[५]।

## सन्दर्भ


१. **पट्टावलीसमुच्चय,** प्रथम भाग, संपा०, मुनि दर्शनविजय, वीरमगाम १६३३ ई० सन्, पृष्ठ ३, ८.

२. प्रो० मधुसूदन ढांकी से व्यक्तिगत चर्चा पर आधारित।

३. **पट्टावलीसमुच्चय**, प्रथम भाग, पृष्ठ ३.

४. देववाचक की तिथि के लिये द्रष्टव्य —
एम० ए० ढांकी 'दत्तिलाचार्य अने भद्राचार्य' ( गुजराती ) **स्वाध्याय,** जिल्द XVIII, अंक २, बड़ोदरा १६८६ ई० सन्, पृ० १६१.

५. **पट्टावलीसमुच्चय,** प्रथम भाग, पृ० १३-१४.

६. वही

७. M. A. Dhaky – "The Nagendra Gaccha" *Dr. H.G. Shastri Felicitation Volume*, Ed., P.C. Parikh & others, Ahmedabad, 1994, pp. 37-42.

८. **पउमचरिउ,** संपा० मुनि पुण्यविजय, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, ग्रन्थांक १२, अहमदाबाद १६६८ ई० सन्, पृ० ५६७-५६८.


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. U. P. Shah, **Akota Bronzes**, Bombay 1956 A. D., p. 35.

१०. Ibid

११. Ibid, p. 34.

१२. Ibid

१३. मुनि पुण्यविजय, "जैन आगमधर और प्राकृत वाङ्मय", **ज्ञानाञ्जलि**, बड़ोदरा १९६९ ई० सन्, हिन्दी खण्ड, पृ० ३०-३२.

१४. **जम्बूचरियं**, संपा० मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक ४४, बम्बई १९५९ ई० स०, हिन्दी भूमिका, पृ० ५.

१५. वही, पृ० १९८-१९९, भूमिका, पृ० ३.

१६. **कुवलयमालाकहा**, संपा०, आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४५, बम्बई १९५९ ई० स०, पृ० २८२-२८३.

१७. M. A. Dhaky – "Nagendra Gaccha", p. 38.

१८. मोहनलाल दलीचंद देसाई, **जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास** ( गुजराती ), बम्बई, १९३२ ई० सन्, पृ० १९२.

१९. पं० लालचन्द भगवानदास गाँधी "शक सं० ९१०नो गुजरातनी मनोहर जिनप्रतिमा" **ऐतिहासिकलेखसंग्रह**, श्री सयाजी साहित्यमाला, ग्रन्थांक ३३५, बड़ोदरा १९६३ ई० सन्, पृ० ३२०-३३०.

२०. वही, पृष्ठ ३२४.

२१. अगरचन्द भँवरलाल नाहटा, संपा०, **बीकानेरजैनलेखसंग्रह**, वीर निर्वाण संवत् २४८२ ( ई० स० १९५९ ), कलकत्ता, पृ० ३९२, लेखांक २७९९.

२२. S. R. Rao, "Jaina Bronzes from Lilvadeva", *Journal of Indian Museums*. Vol. XI, 1955 A. D., p. 33. and U. P. Shah, "Sum Bronzes from Lilvadeva ( Panch Mahals )", *Bulletin of the Baroda Museum and Picture Gallery*, Baroda, Vol. IX, 1952-53 A. D., pp. 43-51 and plates I-II.

२३. मुनि विशालविजय, संपा०, **राधनपुरप्रतिमालेखसंग्रह**, भावनगर १९६० ई०, पृ० ३, लेखांक २। मालपुरा से प्राप्त पार्श्वनाथ की धातु की एक तिथिविहीन प्रतिमा पर भी नागेन्द्रकुल का उल्लेख मिलता है। प्रो० एम० ए० ढांकी ने इसे ई० सन् की १०-११ वीं शती का बतलाया है।

२४. पं० अम्बालाल प्रेमचन्द शाह, **जैन तीर्थसर्वसंग्रह**, जिल्द १, भाग २, अहमदाबाद १९५३ ई०, पृ० १७४.

२५. लक्ष्मणभोजक, "जूनागढ़नी अम्बिका देवीनी धातुप्रतिमानो लेख" **जैन साहित्य के आयाम**, भाग २, **पं० बेचरदास दोशी स्मृतिग्रन्थ**, संपा०, प्रो० एम० ए०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढांकी और प्रो० सागरमल जैन, वाराणसी १९८७ ई० स०, गुजराती विभाग, पृ० १७९।

२६. पं० लालचन्द भगवानदास गाँधी, "सिद्धराज अने जैनो" ऐतिहासिक लेख संग्रह, पृ० ७९।

२७. भोगीलाल साण्डेसरा, **महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल और संस्कृत साहित्य को उसकी देन,** सन्मति ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १५, वाराणसी १९५७ ई० सन्, पृ० ३६-३८।

२८. **धर्माभ्युदयमहाकाव्य** संपा० मुनि पुण्यविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४, वि० सं० २००५.

२९. वही, प्रशस्ति, पृ० १८८-१९०

३०. मुनि बुद्धिसागर, संपा० **जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,** भाग १, लेखांक १४२९.

३१. **पुरातनप्रबन्धसंग्रह,** संपा०, मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १, शान्तिनिकेतन १९३६ ई० सन्, पृ० १३६.

३२. **चन्द्रप्रभचरित,** संपा०-संशोधक, विजयजिनेन्द्रसूरि, श्री हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला, लाखाबावल, शान्तिपुरी, सौराष्ट्र वि० सं० २०४२, प्रशस्ति, पृ० ३६५.

३३. **वासुपूज्यचरित**, जैन धर्म प्रचारक सभा, भावनगर वि० सं० १९८२/ई० सन् १९२६, प्रशस्ति, पृ० १९०-१९१.

३४. शिवनारायण पाण्डेय —, "श्री अजाहरा पार्श्वनाथ जैन तीर्थथी मणि आवेला अमुक शिल्पो", **स्वाध्याय,** पु० १७, अंक १, पृ ४५-४७.

३५. मधुसूदन ढांकी — "स्याद्वादमंजरीकर्तृ मल्लिषेणसूरिना गुरु उदयप्रभसूरि कोण" ? **सामीप्य,** अप्रैल, १९८८, सितम्बर, १९८८, पृष्ठ २०-२९.

३६. द्रष्टव्य, सन्दर्भ संख्या ३३.

३७. आचार्य गिरजाशंकर वल्लभजी शास्त्री, संपा०, **गुजरातना ऐतिहासिक लेखो,** भाग ३, श्री फार्बस गुजराती सभा ग्रन्थावली १५, श्री फार्बस गुजराती सभा, मुम्बई १९४२ ई० सन्, पृ० २१०.

३८. ढांकी, पूर्वोक्त.

३९. मुनि बुद्धिसागर, संपा०, **जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह,** भाग १, बड़ोदरा १९२४ ई० सन्, पृ० १९, लेखांक ३४.

४०. **स्याद्वादमंजरी,** संपा०, आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, बम्बई १९३२ ई० सन्, प्रशस्ति, पृ० १७९-१८०.

४१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई – **जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास,** पृ० ४१९, कंडिका ६०१.

आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, पूर्वोक्त, पृष्ठ XIII. "अंग्रेजी प्रस्तावना" लालचन्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवानदास गाँधी – **ऐतिहासिकलेखसंग्रह,** पृ० २.

त्रिपुटी महाराज, **जैन परम्परानो इतिहास,** भाग २, श्री चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ५४, अहमदाबाद १९६० ई० सन्, पृ० ७.

हीरालाल रसिकलाल कापड़िया, **जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास,** खण्ड २, उपखण्ड १, श्री मुक्ति कमल जैन मोहनमाला, बड़ोदरा १९६८, पृ० ३४४.

४२. ढांकी, पूर्वोक्त, पृष्ठ २०-२४.

४३. देसाई, पूर्वोक्त, कण्डिका ५९८.

४४. **प्रबन्धचिन्तामणि,** संपा०, मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १, शान्तिनिकेतन १९३३ ई० सन्.

४५. वही, प्रशस्ति, पृ० १२५.

४६. मोहनलाल दलीचन्द देसाई, **जैन गुर्जर कविओ,** भाग १, नवीन संस्करण, संपा०, डॉ० जयन्त कोठारी, महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, ई० सन् १९८६, पृ० ६६-६८.

४७. वही, पृ० १२७-१२९.

४८. वही, पृ० १३९-१४२.

४९. द्रष्टव्य, सन्दर्भ संख्या ६.

५०. द्रष्टव्य, सन्दर्भ संख्या, १४ एवं १५.

५१. गुलाबचन्द्र चौधरी, **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास,** भाग ६, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २०, वाराणसी १९७३ ई०, पृष्ठ १५६-१५७.

५२. मुनि जिनविजय, संपा०, **जम्बूचरियं,** प्रस्तावना, पृ० ३.

५३. वही, पृ० ३.

५४. वही, पृ० ६.

५५. देसाई, पूर्वोक्त, पृ० १९२.

५६. सी० डी० दलाल, संपा०, **प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह,** गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला, क्रमांक १३, बड़ोदरा १९२० ई०, पृष्ठ १-७.

५७. Muni Punyavijaya – *Catalogue of Palm Leaf Mss in the Shantinatha Jain Bhandar,* Cambay G. O. S. No. 149, Baroda 1966 A. D. "विवेकमंजरीप्रकरणवृत्ति" की प्रशस्ति, श्लोक १४, पृ० २७८.

५८. द्रष्टव्य – सन्दर्भ कमांक २७.

५९. मुनि पुण्यविजय, संपा०, **सुकृतिकीर्तिकल्लोलिन्यादिवस्तुपालप्रशस्तिसंग्रह,** सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ५, बम्बई १९६१ ई०, पृ० १-१६.

६०. मुनि पुण्यविजय, संपा०, **धर्माभ्युदयमहाकाव्य,** सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४, बम्बई १९४९ ई०.

६१. वही, प्रशस्ति, पृ० १८८-१९०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. Muni Punyavijaya – *op. cit.*, p. 382

६३-६४. साण्डेसरा, पूर्वोक्त, पृ० ६६.

६५. देसाई, पूर्वोक्त, पृ० ३८६.

६६. साण्डेसरा, पूर्वोक्त, पृ० ६६.

६६a. C. D. Dalal, *A Descriptive Catalogue of Mss In the Jain Bhandars at Pattan*, G. O. S. No. 76, Baroda 1937 A. D. , p. 279.

६७. द्रष्टव्य, संदर्भ क्रमांक ३२.

६८-६९. द्रष्टव्य, सन्दर्भ क्रमांक ३३.

७०. द्रष्टव्य, सन्दर्भ क्रमांक ४०.

७१. अम्बालाल प्रेमचन्द शाह, "भाषा अने साहित्य"
रसिकलाल छोटालाल परीख और हरिप्रसाद शास्त्री, संपा०, **गुजरातनो राजकीय अने सांस्कृतिक इतिहास,** ग्रन्थ ४, "सोलंकीकाल" संशोधन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ६९, भो० जे० अध्ययन संशोधन विद्याभवन, अहमदाबाद १९७६ ई०, पृ० ३२८.

७२. Mahanlal Bhagwan Das Jhavery – *Comparative and Critical Study of Mantrashastra*, Shree Jain Kala Sahitya Samsodhak Series No. 1, Ahmedabad 1944 A. D., pp. 300- 301.

७३. द्रष्टव्य, सन्दर्भ क्रमांक ४०.

७४. द्रष्टव्य, सन्दर्भ क्रमांक ४१.

७५. द्रष्टव्य, सन्दर्भ क्रमांक ३५.

७६. मुनि जिनविजय, संपा०, **प्रबन्धचिन्तामणि,** प्रशस्ति, पृ० १२५.

७७. वही, मंगलाचरण, पृ० १.

७८. A. K. Majumdar, *Chaulukyas of Gujarat*, Bombay 1956 A. D. pp. 417- 418.

७९. देसाई, पूर्वोक्त, पृ० ४३०-४३१.

८०. Majumdar, Ibid, pp. 417-418.

८१. G. C. Chaudhary *Political History of Northern India From Jain Sources*, Amritsar 1963 A. D.

८२. तथा श्रीवीरमोक्षात् १६३९ विक्रमात् १२६ (०) ९ वर्षैः श्री विधिपक्षमुख्याभिधानं श्रीमदंचलगच्छं श्री आर्यरक्षितसूरयः स्थापयामासुः।
मेरुतुंगाचार्य विरचित **विचारश्रेणी,**
मुनि जिनविजय, संपा०, **जैन साहित्य संशोधक,** वर्ष २, अंक ३-४, पूना, १९२५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**विचारश्रेणी** की एक मुद्रित प्रति प्रो० एम० ए० ढांकी के पास भी है, परन्तु उसमें प्रकाशन सम्बन्धी सूचनाओं का अभाव है।

८३. देसाई, पूर्वोक्त, पृ० ४४२.

८४. P. Peterson, *Sixth Report of Operation in Search of Sanskrit Mss in the Bombay Circle*, April 1895 -March 1898A. D., pp. 43-46 एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी, **प्रबन्धचिन्तामणि** ( हिन्दी अनुवाद ), सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ३, शान्तिनिकेतन १९४० ई० सन्, प्रस्तावना, ( लेखक – मुनिजिनविजय ) पृ० 'ठ'.

८५. P. Peterson, Ibid, pp. 43-46.

## संकेत सूची

जै० ले० सं० – **जैन लेख संग्रह,** भाग १-३, संपा०, पूरनचन्द नाहर, कलकत्ता १९१८, १९२७, १९२९ ई० सन्.

प्रा० जै० ले० सं० – **प्राचीन जैन लेख संग्रह,** भाग २, संपा०, मुनि जिनविजय, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर.

जै० धा० प्र० ले० सं०– **जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह,** भाग १-२, संपा०, मुनि बुद्धिसागरसूरि, अध्यात्म ज्ञान प्रसार मण्डल, पादरा १९२४ ई० सन्.

प्रा० ले० सं० – **प्राचीन लेख संग्रह,** संपा०, विजयधर्मसूरि, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर १९२९ ई० सन्.

प्र० ले० सं० – **प्रतिष्ठा लेख संग्रह,** संपा०, विनयसागर, सुमति सदन, कोटा १९५३ ई० सन्.

बी० जै० ले० सं० – **बीकानेर जैन लेख संग्रह,** संपा०, अगरचन्द नाहटा एवं भँवर लाल नाहटा, नाहटा ब्रदर्स, ४ जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता १९५६ ई० सन्.

श्री० प्र० ले० सं० – **श्री प्रतिमा लेख संग्रह,** संपा०, दौलत सिंह लोढ़ा, यतीन्द्र साहित्य सदन, धामणिया, मेवाड़ १९५१ ई० सन्.

रा० प्र० ले० सं० – **राधनपुर प्रतिमा लेख संग्रह,** संपा०, मुनि विशालविजय, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर १९६० ई० सन्.

श० वै० – **शत्रुंजय वैभव,** मुनि कान्तिसागर, कुशल संस्थान, पुष्प ४, जयपुर १९६० ई० सन्.

*प्रवक्ता*
**पार्श्वनाथ विद्यापीठ**
**वाराणसी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अर्धमागधी भाषा में सम्बोधन का एक विस्मृत शब्द-प्रयोग 'आउसन्ते'

*के० आर० चन्द्र*

आचार्य श्री हेमचन्द्र अपने **प्राकृत व्याकरण** में शौरसेनी प्राकृत के अन्तर्गत समझाते हैं–

**'णं नन्वर्थे'**, ८/४/२८३( **ननु = णं** )

'शेषं शौरसेनीवत्' के अनुसार मागधी प्राकृत के लिए भी यही नियम लागू होता है ( ८/४/३०२ )।

वे पुनः कहते हैं–

**'आर्षे वाक्यालंकारेऽपि दृश्यते'**, उदाहरण– **'नमोत्थु णं'**

**उत्तराध्ययन** ( २६-११०५ आदि, आदि सूत्रों में भी ) में एक प्रयोग है–

**'धम्मसद्धाए णं भन्ते'**

इस उदाहरण में 'णं' और 'भन्ते' दोनों शब्द ध्यान देने योग्य हैं।

**आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन** एवं **दशवैकालिक सूत्र** जैसे प्राचीन अर्धमागधी प्राकृत ग्रंथों में सम्बोधन के लिए 'आयुष्मत्' शब्द के जो प्राकृत मिलते हैं उनमें 'णं' को विभक्ति प्रत्यय का अंश माना जाय या उसे एक अव्यय के रूप में लिया जाय, यही इस लेख की चर्चा एवं अन्वेषण का विषय है।

ग्रंथों में वाक्यरचना इस प्रकार है– ( म० जै० वि० संस्करण )

( i ) **'सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं'**

( **आचा०** २/६३५, **सूत्रकृ०** २/६३८/६६४/७२२/७४७ )

( ii ) **सुयं मे आउसं तेणं भगवया एव मक्खायं'**

( **आचा०** १/१/१/१, **उत्तरा०** २/४६, १६/५०१, २६/११०१, **दशवै०** ४/३२, ६/४/५०७ )

यहाँ पर ध्यान में रखने का जो विशेष मुद्दा है वह यह कि 'आउसं' के साथ 'तेणं' का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर 'आउसं' एवं 'तेणं' अलग-अलग हैं तो कहीं-कहीं पर दोनों एक ही शब्द के रूप में प्रयुक्त हैं। इन दोनों प्रकार के प्रयोगों के अर्थ की चर्चा आगे की जाएगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैसे आगम ग्रन्थों में 'आयुष्मन्' शब्द के लिए सम्बोधन के तीन रूप मिलते हैं-- आउसो, आउसन्तो और आउसं। 'आउसं' के साथ 'तेणं' का प्रयोग मिलता है जबकि अन्य दो रूप अकेले ही प्रयुक्त हुए हैं।

'आउसो' और 'आउसन्तो' शब्द एकवचन या बहुवचन (सम्मानार्थे भी) दोनों के लिए समान रूप में प्रयुक्त हुए हैं, चाहे वह गृहपति, भिक्षु, भ० महावीर, अन्य तीर्थिक, गणधर, निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी हों।

ऐसे प्रयोगों के उदाहरण जिनमें 'आउसो' या 'आउसन्तो' में वचन भेद नहीं किया गया है।

( i ) **आचारांग** के प्रयोग ( म० जै० वि० संस्करण )

'आउसो' भिक्षु द्वारा गृहपति के लिए या कम्मकरी के लिए सूत्र नं॰ ३६०, ३६८, ३६२

'आउसंतो गाहावती' भिक्षु द्वारा गृहपति के लिए सूत्र नं॰४४५, ४८२, ४८६

'आउसंतो समणा' गृहपति द्वारा भिक्षु के लिए सूत्र नं॰२०४, ४७७-४८१

'आउसंतो' एक भिक्षु द्वारा दूसरे भिक्षु के लिए सूत्र नं० ३६६, ५०२

( ii ) **सूत्रकृतांग** के प्रयोग ( म० जै० वि० संस्करण )

'आउसो' सामान्य व्यक्ति द्वारा सामान्य व्यक्ति के लिए, सूत्र नं० ६५०

'समणाउसो' भगवान महावीर द्वारा निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के लिए सूत्र नं० ६४४

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के द्वारा भगवान महावीर के लिए सूत्र नं० ६४४

'आउसो' गणधर गौतम द्वारा उदक पेढाल पुत्र द्वारा गणधर गौतम के लिए सूत्र नं० ८४५, ८४६

उदक पेढालपुत्र द्वारा गणधर गौतम के लिए सूत्र नं० ८४५, ८४६

'आउसंतो' उदक पेढालपुत्र द्वारा गणधर गौतम के लिए सूत्र नं० ८४५–८४८

गणधर गौतम द्वारा उदक पेढालपुत्र के लिए सूत्र नं० ८४८, ८५२

भगवान महावीर द्वारा उदक पेढालपुत्र के लिए सूत्र नं० ८६७, ८६६

भगवान महावीर द्वारा निर्ग्रन्थों के लिए, सूत्र नं० ८५५

**पालिशब्दकोश के अनुसार** पालि भाषा में भी 'आवुसो' ( प्राकृत – आउसो ) और 'आयुस्मन्त' के प्रयोग वचन-भेदरहित हैं। 'आयुस्मन्तो' ( प्राकृत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आउसंतो ) बहुवचन है और उसी का 'आवुसो' संकीर्ण रूप है। ये सामान्यतः भिक्षुओं के लिए प्रयुक्त सम्बोधन के शब्द हैं ( vide – Pāli-English Dictionery by T. W. Rhys Davids ) परन्तु अर्धमागधी भाषा में भिक्षु या गृहस्थ दोनों के लिए ये शब्द समान रूप में प्रयुक्त हैं।

अब हस्तप्रतों में मिल रहे पाठों को उसी शैली में यहाँ उद्धृत करते हैं और फिर उनका शब्द-विच्छेद करके समझने की कोशिश करते हैं कि अर्धमागधी भाषा में सम्बोधन के लिए कौन सा रूप उपयुक्त होगा,

हस्तप्रतों के पाठ –

**सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं।**

**सुतं मे आउसंतेणं भगवता एवमक्खातं।**

सुयं, ( सुतं )

शब्द-विच्छेद :– सुयं सुतं मे आउसंतेणं, ( आउसं तेणं, आउसंते णं ), भगवया ( भगवता ) एवं अक्खायं ( अक्खातं )।

यदि 'आउसं तेणं' पाठ रखते हैं तो 'तेणं' शब्द भगवान का विशेषण बन जाता है। अर्थ होगा 'उस भगवान के द्वारा'। सुधर्मा स्वामी तो प्रत्यक्ष गणधर थे और उनके द्वारा प्रत्यक्ष गुरु के लिए ऐसे विशेषण का प्रयोग करना यथार्थ नहीं लगता है।

'आउसंतेणं' एक साथ लेने पर यह शब्द भगवान का विशेषण बनेगा, यह भी उपयुक्त नहीं लगता है।

चूर्णिकार एवं वृत्तिकार 'आउसंतेणं' का अर्थ 'आवसता' करके उसे सुधर्मास्वामी के साथ जोड़कर 'मया आवसता' अर्थात् भगवान की पर्युपासना में रहते हुए मेरे द्वारा ऐसा सुना गया था, मेरे द्वारा पर्युपासना करते हुए ऐसा सुना गया। सुधर्मास्वामी को 'मया आवसता' ऐसे शब्द के प्रयोग की आवश्यकता हुई हो यह भी उपयुक्त नहीं ठहरता है।

सारी परम्परा सुज्ञात है कि सुधर्मास्वामी भगवान महावीर के गणधर (शिष्य) थे और उन्होंने ही जम्बूस्वामी को भगवान महावीर के उपदेशों का पाठ मौखिक रूप में हस्तान्तरित किया था। सुधर्मास्वामी ने भगवान से जो कुछ सुना होगा वह उनके पास रहते हुए ही तो सुना होगा अन्यथा कैसे सुन सके होंगे। अतः 'आउसंतेणं' = 'मया आवसता' की भी यथार्थता साबित नहीं होती है। भाषिक दृष्टि से भी 'आवस' का 'आउस' रूप योग्य नहीं लगता है। ऐसा लगता है कि विस्मृत प्रयोग को खींचतान करके समझाने के लिए 'आउस' का 'आवस' कर दिया गया है।

तब फिर क्या शब्द-विच्छेद इस प्रकार नहीं किया जा सकता कि 'आउसंते' और 'णं' दोनो ही अलग-अलग शब्द हैं। 'णं' वाक्यालंकार के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और 'आउसन्ते' सम्बोधन के लिए। जैसे 'आउसो' और 'आउसन्तो' शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृतों के प्रथमा एकवचन के रूप हैं उसी प्रकार 'आउसन्ते' मागधी प्राकृत का प्रथमा एकवचन का रूप है और ये सब रूप सम्बोधन के लिए भी प्रयुक्त हुए हैं। भगवान की देशना मगध देश में हुई थी अतः 'आउसन्ते' शब्द ही उपयुक्त होना चाहिए था। इस विषय में एक नवीन प्रमाण **सूत्रकृतांग** की **चूर्णि** में प्राप्त हो रहा है।

**सूत्रकृतांग** की **चूर्णि** में एक जगह सम्बोधन के लिए 'आउसे' शब्द का प्रयोग मिलता है जो प्राकृत 'आउसो' का मागधी 'आउसे' रूप है।

**सूत्रकृतांग** की मूल गाथा इस प्रकार है–

**उदाहडं तं तु समं मनीए**

**अहाउसो विप्परियासमेव** ( २. ६. ५१ म० जै० वि० )

परन्तु **चूर्णि**पाठ इस प्रकार है – **'अधाउसे विप्परियासमेव'**। **चूर्णि**कार आगे समझाते हैं **'आउसे' त्ति 'हे आयुष्मन्तः'** (**सूत्रकृ०**, पृ० २३२, पा० टि० ४)।

भाषिक दृष्टि से 'अधाउसे' पाठ प्राचीन है जो किसी न किसी तरह चूर्णि में बच गया है। कालान्तर में 'अध' का 'अह' हो गया और 'आउसे' का 'आउसो' कर दिया गया जो उत्तरवर्ती काल की महाराष्ट्री प्राकृत के प्रभाव के कारण हुआ है।

अत्, वत् और मत् अन्त वाले शब्द प्राकृत में अन्त, वन्त और मन्त वाले बन जाते हैं। उसी नियम से 'आयुष्मत्' का 'आयुष्मन्त = आउस्सन्त = आउसन्त' हुआ और सम्बोधन का मागधी-अर्धमागधी रूप 'आउसन्ते' बना और उसी का संकुचित रूप 'आउसे' हुआ जैसा कि पालि भाषा में 'आवुसो' शब्द 'आयुस्मन्तो' का संकीर्ण रूप है।

इस अन्वेषण के आधार पर **आचारांग** का उपोद्घात का वाक्य इस प्रकार होगा।

**"सुते मे आउसन्ते। णं। भगवता एवमक्खातं"**

और अन्य आगम-ग्रन्थों में भी इसी प्रकार का माना जाना चाहिए*। सम्बोधन के लिए जिस प्रकार 'भन्ते' ( भदन्त या भगवन्त का ) रूप है उसी प्रकार ( आयुष्मन्त का मागधी-अर्धमागधी रूप ) 'आउसन्ते' रूप भी उपयुक्त है।

●

---

* **प्राचीन अर्धमागधी की खोज** नामक मेरी पुस्तक में 'आउसन्तेण' रूप उपयुक्त है, ऐसा समझाया गया है परन्तु यह नवीन प्रमाण मिल जाने से 'आउसे' और 'आउसन्ते' प्रयोग ही भाषिक दृष्टि से अर्धमागधी के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं जिनके कारण अर्थ-सम्बन्धी बाधा नहीं रहती है और न ही कोई कल्पना करने की आवश्यकता रहती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# चातुर्मास : स्वरूप और परम्पराएँ

*कलानाथ शास्त्री*

राजस्थान में ही नहीं समूचे देश में विशेषकर उत्तर भारत में वर्षा ऋतु के चार महीने विभिन्न धार्मिक परम्पराओं के केन्द्र बन जाते हैं। यही वह समय होता है जब सभी धर्मों के तपस्वी साधु-संन्यासी अपनी निरन्तर यात्राओं से विरत होकर एक ही स्थान पर चार मास तक रहते हैं और वहाँ के श्रद्धालुओं को धर्मोपदेश देते हैं। इसे चातुर्मास्य करना या चौमासा करना कहते हैं। इन चार मासों में इसी कारण अनेक धार्मिक रीति-रिवाज, आचार-परम्पराएँ और उत्सव समाहित हो गये हैं। इसका एक कारण तो प्राचीन भारत की इस सामाजिक स्थिति में तलाशा जा सकता है कि वर्षा से रास्ते रुक जाने और यात्राओं के प्रचुर और सशक्त साधन उपलब्ध न होने के कारण इन चार मासों में यात्राएँ नहीं की जाती थीं। यायावर साधु-संन्यासी एक जगह स्थिर हो जाते थे। तीर्थयात्राएँ बन्द हो जाती थीं तथा दूर जाकर गुरुओं से पढ़ने की स्थिति भी नहीं बनती थी।

इसी परम्परा में वेदकाल का वह वर्षाकालीन स्वाध्याय भी आता है जिसे आज भी श्रावणी या उपाकर्म कहा जाता है। उस समय श्रावणी पूर्णिमा से वेद के पुनर्नुशीलन का क्रम चलता था। इसी के साथ भाद्रपद मास में वेदकालीन ऋषि अपने तपोवनों में अपने शिष्यों के साथ अनेक प्रकार की तैयारियाँ करते थे, जिनमें वर्ष भर के यज्ञ सम्बन्धी कार्यों के लिए दर्भ तोड़कर लाना भी सम्मिलित था क्योंकि वर्षाकाल में कुशों और वनस्पतियों की सहज वृद्धि होती थी। रस्म के रूप में आज भी भाद्रपद की अमावस्या को यह कार्य किया जाता है जिसे कुशग्रहणी अमावस्या कहा जाता है। इस प्रकार वैदिक काल से ही चातुर्मास शताब्दियों तक यज्ञ और स्वाध्याय की परम्पराओं से जुड़ा रहा। आज भी उस परम्परा में शंकराचार्य आदि संन्यासी धर्मगुरु इन दिनों एक स्थान पर ही निवास करते हैं और धर्मोपदेश करते हैं। ये चौमासा कब शुरू होता है इस बारे में दो परम्पराएँ हैं। एक परम्परा आषाढ़ शुक्ल द्वादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक चातुर्मास मानती है और दूसरी परम्परा आषाढ़ मास की संक्रान्ति से ( वह कभी भी हो ) कार्तिक मास की सूर्य संक्रान्ति तक चातुर्मास मानती है। श्वेताम्बर परम्परा में श्रावण वदी प्रतिपदा से कार्तिक पूर्णिमा तक चातुर्मास माना जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारत की श्रमण संस्कृति भी बहुत प्राचीन है। इसमें भी वर्ष के चार माहों में साधुओं और मुनियों के एक स्थान पर रह कर धर्मोपदेश करने की बहुत प्राचीन परम्परा है। उसी परम्परा में आज भी भाद्रपद माह में जो चातुर्मास का मध्य है, जैन धर्मावलम्बी पर्युषण पर्व मनाते हैं। दिगम्बर आम्नाय में इसे दशलक्षण पर्व कहा जाता है। ये वर्ष भर के महत्त्वपूर्ण धार्मिक कृत्य हैं। दिगम्बर जैनों में इसकी पूर्ति के बाद क्षमापना पर्व भी मनाया जाता है। वर्षाकालीन इन मासों में धर्माचरण पर विशेष बल देने की परम्परा उपर्युक्त चातुर्मास की परम्परा का ही अंग प्रतीत होती है। महावीर ने गौतम गणधर को प्रथम धर्मदेशना ( उपदेश ) श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को दी थी। जिस प्रकार वर्षा के बादल जल बरसा कर हल्के और शुभ्र हो जाते हैं उसी प्रकार कषायों ( कलुष ) और विषयों ( वासना ) का त्याग कर धर्मार्थी इन दिनों निर्मल होने का प्रयत्न करता है।

वैष्णव परम्परा के लिए भी श्रावण और भाद्रपद माहों का धार्मिक महत्त्व है। आज भी वैष्णव मन्दिरों में सावन के झूले और झाँकियाँ तो भक्तिकालीन परम्परा के रूप में चले आ रहे हैं किन्तु इससे पूर्व भी जब विष्णु की उपासना को व्यापकता दी जाने लगी थी, सनातन धार्मिक वैष्णव आचारों के प्रमुख कृत्य श्रावण और भाद्रपद माह में किये जाते थे। श्रावण से प्रारम्भ होकर ऐसे उत्सव दीपावली के बाद तक चलते थे। चाहे आज इस अवधि को "देव सोने की" ( देवताओं के सोते रहने की ) अवधि बताकर मांगलिक कार्यों के मुहूर्त निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता हो किन्तु धार्मिक कार्यों का इसमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है बल्कि उनकी विपुलता ही है। गणेश चतुर्थी और जन्माष्टमी के अलावा भाद्रपद शुक्ल पंचमी को ऋषि पंचमी के रूप में इसी माह में मनाया जाता है जिसमें वैदिक ऋषियों का स्मरण किया जाता है।

इसी परम्परा का अभिन्न अंग है अनन्त चतुर्दशी, जो वैष्णव सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण पर्व है। यह पर्व मूलतः इस धारणा के साथ शुरू हुआ होगा कि, विष्णु ही महाविभूति ( विश्व का पालन करने वाली सर्वव्यापक शक्ति ) अनन्त हैं, अन्तर्यामी हैं और व्यापक हैं। वे नित्य विभूति हैं, राम, कृष्ण आदि उन्हीं की लीला रूप हैं। आचार की मर्यादा को नियन्त्रित करने वाले प्राचीन वैष्णव सम्प्रदाय में ( जो वासुदेव सम्प्रदाय से अलग था ) विष्णु के इस अनन्त रूप को समस्त वैष्णवों के लिए वन्दनीय माना गया। वैष्णवों की यह धारणा है कि, इन चार माहों में विष्णु क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं और भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को करवट लेते हैं जिस दिन विष्णु परिवर्तनोत्सव मनाया जाता है। सहस्रशीर्षा विष्णु की तरह सहस्रफण होने के कारण शेषनाग को भी अनन्त कहा जाने लगा था। अनन्त-शयन ( शेषशायी ) भगवान विष्णु इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवधि में एक जगह ही रहते हैं और आराम करते हुए भी भक्तों को संसार-बन्धन से मुक्त करते रहते हैं। इसी परम्परा में भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी को अनन्त विष्णु की पूजा करके वैष्णव लोग कच्चे सूत का चौदह गाँठों वाला रँगा हुआ एक डोरा अपनी बाजू पर बाँधते हैं जो व्यापक वैष्णव परम्परा के अनुयायी होने का प्रतीक है। यह बन्धन संसार के बन्धनों से मुक्ति दिलाता है। वैष्णव परम्परा का यह उत्सव वर्षाकालीन चातुर्मास का प्रमुख व्रत है।

वैष्णव सम्प्रदायों में भक्तिकालीन धाराओं के आने के साथ जब विष्णु के गोपाल और वृन्दावन-बिहारी रूप की माधुर्य लक्षणा भक्ति प्रचलित हुई तो व्यापक और अनन्त विष्णु की मर्यादापरक पूजा उतनी सुप्रचलित नहीं रही जितनी मध्यकाल में थी, तथापि उसके प्रतीक के रूप में आज भी वैष्णवों में अनन्त का व्रत करने और डोरा बाँधने की यह परम्परा चली आ रही है।

जैसा पहले बताया जा चुका है जैन आम्नायों में भाद्रपद मास के इन पर्वों का सर्वाधिक महत्त्व है। जैन धर्म में शारीरिक वृत्तियों का अधिकाधिक संयम, आचार का कट्टर अनुशासन और सांसारिक बन्धनों से पूर्ण विरक्ति आदि को प्रमुखता दी गयी है। इसी का अंग है उपवास ( कषाय, विषय और आहार का त्याग ) जिसका सिद्धान्त है शरीर का मोह त्याग कर उसकी वृत्तियों को नियन्त्रित करना। उपवास तथा अन्न-जल त्याग की यह धारणा जैन आचार का महत्त्वपूर्ण अंग है। अन्न-जल त्यागी साधुओं और श्रावकों को सर्वाधिक श्रद्धा का पात्र इसी दृष्टि से माना जाता है। कुछ विद्वानों का तो यह मानना है कि, उपवास की अवधारणा जो सनातनी परम्पराओं में भी व्याप्त हो गई है, श्रमण संस्कृति का प्रभाव है, अन्यथा वैदिक संस्कृति में व्रत तो था, उपवास नहीं। जो भी हो उपवास से सम्बन्धित आचारों का प्रमुख केन्द्र भाद्रपद मास ही जैन धर्म के दोनों आम्नायों ( श्वेताम्बर और दिगम्बर ) में माना जाता है। इस मास में अधिक से अधिक आत्मसंयम का पालन तथा उपवास रख धार्मिक आचारों का पालन और उपदेशों का श्रवण जैन धर्मावलम्बियों के प्रमुख धार्मिक कृत्य हैं। दिगम्बर आम्नाय में इसे दशलक्षण पर्व कह कर भाद्रपद शुक्ल पंचमी से चतुर्दशी तक मनाया जाता है। इन दस दिनों में धर्म के दस प्रकारों या तत्त्वों ( उत्तम अर्थात् अध्यात्मोन्मुख क्षमा अर्थात् सहनशीलता, उत्तम मार्दव अर्थात् नम्रता, उत्तम आर्जव अर्थात् सरलता व सहजता, उत्तम सत्य अर्थात् सच्चाई, उत्तम शौच अर्थात् निःस्पृहता, संयम अर्थात् अनुशासन, तप, त्याग, आकिंचन्य अर्थात् अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य अर्थात् अध्ययन ) का पालन और उपदेश-श्रवण किया जाता है। इसके अनन्तर आश्विन कृष्ण द्वितीया को क्षमापना पर्व मनाया जाता है जब समाज के प्रत्येक व्यक्ति से मतभेद भुलाकर किसी भी प्रतिकूल वचन या कार्य के लिए सबसे क्षमा माँगी जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वेताम्बर आम्नाय में इन उपवासों और आचारों को पर्युषण कहा जाता है, जिसका शब्दार्थ है उपासना। भाद्रपद कृष्ण एकादशी से शुक्ल चतुर्थी तक ये पर्व मनाते हैं जिसमें अर्हन्तों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों और सर्व साधुओं का पूजन, नमन तथा सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के सिद्धान्तों का चिन्तन व पालन किया जाता है। इसके अनन्तर शुक्ल पंचमी को ( जिसे सनातनी ऋषि पंचमी के रूप में मनाते हैं ) संवत्सरी के रूप में मनाया जाता है जो पर्युषण पर्व की सम्पन्नता ( सफल समाप्ति ) का प्रतीक है। एक तरह से इस दिन श्रावक का आध्यात्मिक पुनर्जन्म या नया वर्ष शुरू हो जाता है। इस प्रकार जैनों के दोनों आम्नायों में भाद्रपद मास के इन धार्मिक पर्वों को वर्ष का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आचार-पर्व माना गया है।

राजस्थान में जैन धर्म का विपुल प्रचार होने के कारण इन पर्वों की गूँज भाद्रपद मास के दूसरे पखवाड़े भर बराबर सुनाई देती रहती है। इसी प्रकार ब्रज की कृष्ण-भक्ति परम्परा का पूरा प्रभाव होने के कारण श्रावण मास की ब्रज-परिक्रमाओं, झांकियों और भाद्रपद मास के व्रत की परम्परा भी यहाँ वर्षों से चली आ रही है। यद्यपि वैदिक संस्कृति के स्वाध्यायों की परम्परा विलुप्त सी हुई प्रतीत होती है किन्तु वैष्णव सम्प्रदाय की अनन्त चतुर्दशी आज भी इस बात की प्रतीक है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति के समन्वय को सनातन भारतीय परम्परा का परिचायक मानने वाला धार्मिक सनातनी वैष्णव, शेषशायी, पृथ्वी-पालक विष्णु को आज भी अपनी चेतना में अविभाज्य रूप से व्याप्त मानता हुआ उस अन्तर्यामी अनन्त की पूजा करता है जो ब्रह्माण्ड के विराट स्वरूप का प्रतीक है।

**निदेशक, भाषा विभाग, राजस्थान शासन।**
निवास – मंजू निकुंज, सी-८, पृथ्वीराज रोड
जयपुर ( राजस्थान )

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# वाचक श्रीवल्लभरचित 'विदग्धमुखमण्डन' की दर्पण टीका की पूरी प्रति अन्वेषणीय है

*स्व० अगरचन्द नाहटा*

१७वीं शताब्दी में खरतरगच्छ के वाचक श्रीवल्लभ बहुत बड़े प्रतिभाशाली विद्वान् एवं टीकाकार हुए हैं, जिन्होंने तपागच्छ के आचार्य विजयदेवसूरि की प्रशस्तिरूप में 'विजयदेवमाहात्म्य' नामक महाकाव्य बनाया। उससे कुछ पहले तपागच्छीय उपाध्याय धर्मासागर ने खरतरगच्छ और तपागच्छ में विरोध और फूट का बीज डाल दिया था। ऐसे विषम वातावरण में खरतरगच्छ का एक विद्वान् तपागच्छ के एक आचार्य के सम्बन्ध में महाकाव्य बनाये, यह बहुत ही उदारता और महानता की बात है। मैंने वाचक श्री वल्लभ के कई अज्ञात ग्रन्थों की खोज की और ३०-४० वर्ष पहले एक लेख प्रकाशित करवाया था। उसके बाद उनकी रचित कई और भी रचनायें प्राप्त हुईं और कुछ तो प्रकाशित भी हो चुकी हैं। महोपाध्याय विनयसागर जी ने 'श्री लच्छिनाममाला' की श्रीवल्लभ टीका को सम्पादित करके लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति मन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित की है। उसकी भूमिका में उन्होंने श्रीवल्लभ सम्बन्धी विस्तृत प्रकाश डाला है। श्रीवल्लभरचित संघपति सोमजी-रूपजी सम्बन्धी एक ऐतिहासिक संस्कृत काव्य की एक अपूर्ण प्रति राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रह में आई। उसे भी सम्पादित करके महो० विनयसागर जी ने उसी संस्था से प्रकाशित करवा दिया है।

जैनेतर रचनाओं पर जैन टीकाओं के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए बौद्धकवि धर्मदासरचित 'विदग्धमुखमण्डन' की कई जैन टीकाओं का मैंने विवरण दिया था, उसके बाद इस कृति की, वाचक श्रीवल्लभरचित दर्पण नामक, टीका की अपूर्ण प्रति प्राप्त हुई। मैं इसकी पूरी प्रति की खोज में रहा पर अभी तक कहीं प्राप्त नहीं हुई। अतः इस लेख में अपूर्ण प्रति का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित कर रहा हूँ। जिस किसी सज्जन को इस दर्पण टीका की पूरी प्रति प्राप्त हो जाय वे मुझे सूचित करें।

विदग्धमुखमण्डन टीका की प्राप्त प्रति में पहला व तीसरा पत्र नहीं है और २६ पत्रों के बाद के अन्तिम पत्र भी नहीं हैं। प्रति त्रिपाठ लिखी हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात्, बीच में मूलपाठ एवं उसके ऊपर-नीचे टीका लिखी हुई है। प्रति के कुछ पत्र जर्जरित व टूटे हुए होने से कहीं-कहीं पाठ के अक्षर कट गये हैं। प्रति १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की लिखी प्रतीत होती है। अर्थात् प्रस्तुत टीका के रचयिता के समय या उसके थोड़े बाद की है। पत्रांक २४ में मूलग्रन्थ का प्रथम परिच्छेद प्राप्त हुआ है और उसके ऊपर वाले भाग में प्रथम परिच्छेद की टीका भी पूरी हो गई है। टीका की पुष्पिका में लिखा है – "इति श्रीमद् वृहत् खरतरगच्छाधीश्वर युगप्रधान श्रीजिनचन्दसूरि पट्टालंकारे युगप्रधान श्रीजिनसिंहसूरि शिष्य पट्ट साम्राज्ञा मान युगप्रधान श्री जिनराजसूरि विरचित नाम प्रतिष्ठितेवा० श्रीवल्लभगणि विरचिते श्री विदग्धमुखमण्डन दर्पणे प्रथम परिच्छेद"।।

इससे यह सिद्ध होता है कि यह दर्पण टीका उन्होंने जिनराजसूरि जी के नाम से रची एवं प्रतिष्ठित की। अतः टीका का रचनाकाल सं० १६७४ के बाद का है। इसी तरह से सोमजी सम्बन्धी ऐतिहासिक काव्य भी सं० १६७४ के बाद ही रचा गया है। इन दोनों रचनाओं की पूर्ण प्रतियाँ अन्वेषणीय हैं।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ में धर्मदास द्वारा रचित विदग्धमुखमण्डन की त्रिलोचनकृत टीका है। इसे संवत् १८६३ में पौष सुदी १ शुक्रवार को अमृतसर में स्थानकवासी परम्परा के श्री दयालऋषि, पू० दीपचन्द ऋषि एवं गुरुदास ऋषि के लघु भ्राता ने लिपिबद्ध किया।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# द्रौपदी कथानक का जैन और हिन्दू स्त्रोतों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

( शोध-प्रबन्ध सारांश )

*श्रीमती शीला सिंह*

**भूमिका**

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा अत्यन्त समृद्ध रही है। विविधता, उदारता, आध्यात्मिकता, समन्वयशीलता ( अर्थात् विभिन्नता में एकता की परिकल्पना ) भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है। प्राचीन काल से ही यहाँ दार्शनिक चिन्तन और जीवन-शैली में विविधता रही है। सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक क्षेत्र में जिन अनेक मार्गों और सिद्धान्तों का आविर्भाव हुआ, उनकी विविधताओं को भारतीय संस्कृति ने सुन्दर ढंग से समाहित किया। भारत का कोई भी दर्शन, कोई भी धर्म, कोई भी जाति, कोई भी वर्ग यह दावा नहीं कर सकता कि वह दूसरे दर्शनों से प्रभावित नहीं हुआ अथवा वह अपने मूल रूप में अक्षुण्ण रहा। वास्तविकता तो यह है कि सभी दर्शनों, धर्मों, वर्गों आदि में परस्पर आदान-प्रदान हुआ है। एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ा है। विभिन्न संस्कृतियों ने परस्पर विनिमय किया। यह आदान-प्रदान जीवन के हर क्षेत्र में हुआ। एक ने दूसरे के देवमण्डल, महापुरुषों, शलाकापुरुषों को अपनाया, फिर उन्हें अपना परिवेश दिया। साहित्य का क्षेत्र इस आदान-प्रदान से कैसे अछूता रह सकता था ? उदाहरण के लिए वैदिक परम्परा के सार्वकालिक महत्त्व के महान महाकाव्य रामायण एवं महाभारत को जैनपरम्परा ने भी ग्रहण किया। महाभारत के कथानकों, पात्रों, घटनाओं को आधार बनाकर जैन साहित्य में प्रायः हर विधा में अर्थात् महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, चम्पू आदि रचे गये। जैन परम्परा में भी महाभारत के कथानक या पाण्डव चरित से सम्बन्धित रचनाएँ निर्मित हुई हैं। महाभारत के प्रमुख पात्रों को भी अपनाकर जैनों ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया। कृष्ण, द्रौपदी, भीम आदि के कथानक इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माने जा सकते हैं।

यहाँ स्वाभाविक जिज्ञासा उठती है कि भारतीय संस्कृति की निवृत्तिमार्गी श्रमण परम्परा के प्रतिनिधि जैन धर्म एवं दर्शन ने प्रवृत्तिमार्गी वैदिक परम्परा के पात्रों को क्या उसी रूप में अपनाया या उसमें अपनी मान्यताओं के अनुसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवर्तन तथा परिवर्धन किया। इसका स्पष्ट समाधान यही है कि जैनाचार्यों ने इन पात्रों के जीवन को अपनी निवृत्तिमार्गी परम्परा में ढाला है। हम पाते हैं कि द्रौपदी का चरित्र महाभारत के सभी पात्रों में अत्यन्त अनूठा एवं सशक्त है। उसके चरित्र की विविधता एवं विलक्षणता से सभी अभिभूत हैं। महाभारत के युद्ध में उसकी प्रमुख भूमिका निर्णायक कही जा सकती है, फिर भी वह अपना सम्पूर्ण जीवन एक पतिव्रता गृहस्थ नारी के रूप में ही जीती है। किन्तु जैन परम्परा में उसे अपने पूर्वभव में एवं वर्तमान में एक संन्यासिनी के रूप में चित्रित किया गया है। जैन परम्परा में अपने पूर्वभव में साध्वी जीवन में शिथिलाचार सेवन करने से और मुनि को विषैला आहार देने से न केवल दुर्गति की पथिक बनती है, अपितु उसके उस जीवन पर भी कुप्रभाव पड़ता है। अपने पूर्व जन्म के संकल्प के कारण वह पाँच पतियों की पत्नी बनती है और अनेक कटु सत्यों को भोगती है। अन्त में संन्यास ग्रहण कर वह सन्मार्ग की पथिक बन जाती है। इस प्रकार जैन परम्परा में उसके जीवनवृत्त पर निवृत्तिमार्ग का प्रभाव स्पष्ट देखा जाता है।

दोनों परम्पराओं में द्रौपदी-चरित के स्वरूप में कितना साम्य तथा कितना वैषम्य है, इसका अध्ययन हमने प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में किया है।

### ( क ) वैदिक परम्परा में द्रौपदी कथा

वैदिक परम्परा में द्रौपदी एक क्षत्राणी के रूप में चित्रित है, जिसके अन्दर स्वाभिमान का भाव कूट-कूट कर भरा हुआ है। उसे अपमानित होना कदापि सह्य नहीं है, इसीलिए वह प्रतिशोध हेतु दृढ़-संकल्प करती है, जिसके लिए वह पाण्डवों को निरन्तर प्रेरित करती रहती है। उसकी प्रतिज्ञा के फलस्वरूप महाभारत का युद्ध होता है। पाण्डवों के सारे क्रिया-कलापों में सहधर्मिणी, उनके सुख-दुःख की सहगामिनी द्रौपदी उनकी प्रेरणास्रोत है तथा उनकी शक्ति का केन्द्र वही है। द्रौपदी पाँच पतियों की पत्नी होते हुए भी, महासती के रूप में समादृत है। पाँच पतियों की पत्नी होना, उसके गौरव में वृद्धि ही करता है, न कि उसके चरित्र की दुर्बलता का प्रकाशन।

### ( ख ) जैन परम्परा में द्रौपदी कथा

जैन साहित्य में द्रौपदी की कथा, वैदिक साहित्य से कुछ भिन्नता लिये हुए है। वहाँ द्रौपदी पाँच पतियों की पत्नी होते हुए भी सोलह महासतियों में से प्रमुख गिनी जाती है। जैन साहित्य में द्रौपदी के अनेक पूर्वजन्मों की कथा वर्णित है। उन अनेक पूर्वजन्मों के पश्चात् ही वह अपने वर्तमान जीवन को प्राप्त करती है। जैन-परम्परा में मोक्ष मार्ग की साधना में स्त्रियों को अर्गला माना गया है एवं उन्हें हेय दृष्टि से देखा गया है। द्रौपदी के पूर्वभवों को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**( ग ) द्रौपदी विषयक साहित्य**

*१. वैदिक साहित्य*

वैदिक परम्परा का अनुसरण करने वाली कृतियों में द्रौपदी कथा सर्वप्रथम महाभारत में ही मिलती है और उसी को आधार बनाकर परवर्ती रचनाकारों ने द्रौपदी का चित्रण भी किया है। बाद की रचनाओं में कुछ तो पाण्डवों की सम्पूर्ण कथा का वर्णन करती हैं और कुछ तो घटना विशेष को आधार बनाकर ही लिखी गयी हैं। ऐसी रचनाओं में द्रौपदी का उल्लेख प्रसंगवश हुआ है। कुछ प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं— **महाभारत, किरातार्जुनीयम्** ( भारवि— ५वीं शती का मध्यकाल ), **वेणीसंहार** ( भट्टनारायण — ७५० ई० ), **बालभारत** ( राजशेखर — ८८०-९२० ई० ), **भारतमञ्जरी** ( क्षेमेन्द्र — १०२५-१०६६ ई० ), **युधिष्ठिरविजयम्** ( वासुदेव — १२वीं शताब्दी ), **भारतचम्पू** ( अनन्तभट्ट १५वीं शताब्दी ) आदि।

*२. जैन साहित्य*

द्रौपदीविषयक जैन साहित्य को हम निम्न चार वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं —

१. पहले वर्ग में वे कृतियाँ हैं, जिनमें द्रौपदी के पूर्वभवों से प्रमुख भव नागश्री और सुकुमालिका के वृत्तान्त क्रमशः जीववध के दुष्परिणामों और श्रमणी वेश में शिथिलाचरण के दुष्परिणामों के दृष्टान्त रूप में वर्णित हैं।

२. दूसरे वर्ग में, वे ग्रन्थ हैं, जिनमें २४ तीर्थंकरों से सम्बद्ध दश आश्चर्यों के प्रसंग में पञ्चम आश्चर्य, जिसमें प्रचलित मान्यता के विपरीत एक साथ दो क्षेत्रों के वासुदेव एक क्षेत्र में उपस्थित होते हैं, के प्रसंग में द्रौपदी का वृत्तान्त प्राप्त होता है।

३. तीसरे वर्ग में वे ग्रन्थ हैं, जो सम्पूर्ण पाण्डवचरित का चित्रण करते हैं और जिनमें प्रसंगवश द्रौपदी का वृत्तान्त प्राप्त होता है।

४. चौथे वर्ग में महाभारत के किसी घटना विशेष को आधार बनाकर रचित ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

द्रौपदीविषयक प्रमुख जैन कृतियाँ इस प्रकार हैं — **स्थानाङ्गसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, प्रश्नव्याकरण, कल्पसूत्र, हरिवंशपुराण, द्विसन्धानमहाकाव्य, उत्तरपुराण, आख्यानकमणिकोश, निर्भयभीमव्यायोग, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, पाण्डवचरित, बालभारत, द्रौपदी स्वयंवर, पाण्डवपुराण** आदि। इसके अतिरिक्त **ज्ञाताधर्मकथा, प्रश्नव्याकरण** और **कल्पसूत्र** की टीकाओं में द्रौपदी वृत्तान्त प्राप्त होता है।

**( ग ) वैदिक और जैन परम्परा में द्रौपदी कथा में साम्य**

द्रौपदी कथानक में साम्य की दृष्टि से दोनों परम्पराओं में वर्णित कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिन्दुओं को इस प्रकार इंगित किया जा सकता है —

पाण्डवों का गृहनगर हस्तिनापुर ( हस्तिनागपुर ), द्रौपदी के पिता द्रुपद, भाई धृष्टद्युम्न एवं शिखण्डी ( अपवाद रूप में कुछ स्थानों पर केवल धृष्टद्युम्न एवं कहीं अनेक भाई ), स्वयंवर विधि से विवाह, अर्जुन द्वारा लक्ष्यवेध प्रायः स्वयंवरागत अन्य राजाओं और ब्राह्मणवेशीय पाण्डवों से युद्ध, द्रौपदी के पाँच पति ( कुछ जैन ग्रन्थों में एकमात्र अर्जुन ) दोनों परम्पराओं में समान रूप से वर्णित हैं।

द्यूत-क्रीड़ा, द्रौपदी-अपमान, वनवास एवं अज्ञातवास की अवधि ( अपवाद-स्वरूप एक जैन ग्रन्थ में १२ वर्ष का गुप्तवास ), अज्ञातवास के स्थल के रूप में विराटनगर, द्रौपदी का सैरन्ध्री के रूप में अज्ञातवास व्यतीत करना, कीचक वृत्तान्त और युद्धभूमि के रूप में कुरुक्षेत्र दोनों परम्पराओं में समान हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य घटनाएँ भी दोनों परम्पराओं में समान हैं, जैसे — किर्मीरवध, हिडिम्बवध, बकवध, जयद्रथ द्वारा द्रौपदीहरण, भीम द्वारा सौगन्धिक पुष्प लाकर द्रौपदी को देना आदि।

**( ङ ) वैषम्य**

दोनों परम्पराओं में वर्णित भिन्नता के अध्ययनक्रम में हमने पहले महाभारत के वृत्तान्त का उल्लेख कर फिर जैन परम्परा में उससे भिन्नता दर्शायी है —

**महाभारत** में द्रौपदी-जन्म का प्रयोजन क्षत्रियवंश संहार वर्णित है; किन्तु जैन-परम्परा में नागश्री और सुकुमालिका के रूप में किये गये कर्मों का फल भोग है। जन्म — द्रौपदी अयोनिजा कन्या है, जो द्रुपद द्वारा कराये जा रहे यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई है, जबकि जैन-ग्रन्थों में माता की कुक्षि से उत्पन्न दिखलाई गई है। महाभारत में द्रौपदी का जन्मस्थल पाञ्चाल देश है, जबकि जैनग्रन्थों में 'काम्पिल्यपुर' या 'माकन्दीनगरी' है। महाभारत में द्रौपदी की माता के नाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, जबकि जैन-परम्परा में चुलनी देवी, भोगवती और दृढ़रथा — ये तीन नाम विभिन्न ग्रन्थों में मिलते हैं। वैदिक परम्परा में द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न एवं शिखण्डी हैं जबकि जैन-परम्परा में कहीं धृष्टद्युम्न एवं शिखण्डी, तो कहीं अकेला भाई धृष्टद्युम्न, तो कहीं धृष्टद्युम्न के साथ अनेक भाइयों का भी उल्लेख मिलता है। वैदिक परम्परा में भगवान शिव के वरदान से द्रौपदी को पाँच पतियों की प्राप्ति का संकेत है, किन्तु जैन परम्परा में पूर्वभव में किये गये निदान के कारण द्रौपदी के पाँच पति प्राप्त होते हैं। स्वयंवर शर्त के लिये दोनों परम्पराओं में लक्ष्यवेध की घटना उल्लिखित है। किन्तु जैन परम्परा में राधावेध और चन्द्रकवेध की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाभारत के एक चक्र के स्थानपर इसमें बाईस चक्रों के घूमने का उल्लेख मिलता है। स्वयंवर में पाण्डव आगमन — वैदिक परम्परा में लाक्षागृह से बच निकलकर पाण्डव, ब्राह्मणवेश में उपस्थित होते हैं, किन्तु जैनपरम्परा में कुछ ग्रन्थों में पाण्डु राजा के साथ राजकुमार के रूप में, तो कुछ ग्रन्थों में उनके ब्राह्मणवेश में ही आने का उल्लेख मिलता है। वैदिक परम्परा में द्रौपदी केवल अर्जुन का वरण करती है किन्तु बाद में, कुन्ती के आदेश पर पाँचों पाण्डवों से विवाह होता है, जबकि जैनपरम्परा में अर्जुन के गले में पहनायी गयी माला दैवयोग से टूटकर पाँचों पाण्डवों के गले में पड़ती है, तो कहीं पाँचों पाण्डवों के गले में वह दिखलाई पड़ती है तथा कहीं पाँचों को वह पूर्वभव के निदान के कारण वेष्टित करती है। द्रुपद के चिन्ता का निवारण — महाभारत में अनहोनी घटना ( माता की आज्ञापालन हेतु पाँचों पाण्डवों द्वारा द्रौपदी को पत्नी रूप में स्वीकार करने के निर्णय ) से चिन्तित द्रुपद को व्यास मुनि सान्त्वना देते हैं, किन्तु जैनपरम्परा में चारण मुनि द्रौपदी के पूर्वभवों का वृत्तान्त सुनाकर, उन्हें चिन्तामुक्त करते हैं। पति-सान्निध्य — महाभारत में प्रत्येक पति के साथ एक-एक वर्ष का समय नियत है, किन्तु कुछ जैन ग्रन्थों में प्रत्येक के साथ एक-एक दिन का समय और कुछ ग्रन्थों में प्रत्येक के लिए एक-एक वर्ष का समय निश्चित है। पुत्रों की संख्या के विषय में वैदिक परम्परा में सामान्य रूप से एवं जैन परम्परा के कुछ ग्रन्थों में द्रौपदी को प्रत्येक पति से एक-एक पुत्र होने का निर्देश मिलता है। इस प्रकार पाँच पुत्र हुए और भिन्न-भिन्न नामों के होते हुए भी सभी पाञ्चाल कहे गये, जबकि जैन परम्परा में प्रायः एकमात्र पुत्र 'पाण्डुसेन' है। कुछ जैन ग्रन्थों में पाञ्चालों की मृत्यु के पश्चात् पुनः एक पुत्रोत्पत्ति वर्णित है। महाभारत एवं कुछ जैन ग्रन्थों में वनवास से सम्बद्ध द्वैवतन, काम्यकवन एवं गन्धमादन पर्वत का उल्लेख हुआ है, परन्तु निवास के क्रम में अन्तर है, तो कुछ जैन ग्रन्थों में कालाञ्जला वन, रामगिरि पर्वत, दण्डक वन, कालिंजर आदि वनों के नाम प्राप्त होते हैं। महाभारत के जटासुर द्वारा द्रौपदी के हरण का वृत्तान्त जैन परम्परा में अनुपलब्ध है। वैदिक परम्परा में द्रौपदी सत्यभामा संवाद वनवास की अवधि में काम्यक वन में होता है, जबकि जैन-ग्रन्थों में अज्ञातवास के पश्चात् विराटनगर से वापस होते हुए, द्वारिकागमन के समय है। महाभारत में भीम द्वारा कीचक वध हुआ, जबकि कुछ जैन ग्रन्थों में उसे जीवनदान देने का वृत्तान्त वर्णित है। उपकीचकों की संख्या महाभारत में १०५ है। कुछ जैन ग्रन्थों में भी वह १०५ ही है, किन्तु कुछ में १०० है। महायुद्ध — वैदिक परम्परा के अनुसार अज्ञातवास सहित वनवास का समय बीत जाने पर दुर्योधन द्वारा राज्य न दिये जाने पर पाण्डव युद्ध की भूमिका बनाते हैं, किन्तु जैन ग्रन्थों में कहीं पाण्डवों द्वारा बिना युद्ध किये ही हस्तिनापुर में आधा राज प्राप्त करना और पुनः दुर्योधन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा सन्धि में दोष निकालने पर द्वारिका जाना, तो कहीं विराटनगर से ही उनके द्वारिका एवं कुछ समय पश्चात् होने वाले कृष्ण-जरासन्ध युद्ध में श्रीकृष्ण के पक्ष में हो, जरासंध पक्ष से आये कौरवों से युद्ध का वर्णन है। कुछ जैन ग्रन्थ महाभारत के समान ही कौरवों-पाण्डवों के मध्य युद्ध का वर्णन करते हैं। वैदिक परम्परा में युद्ध में पाण्डवों की विजय और हस्तिनापुर राज्य की प्राप्ति का वर्णन है, किन्तु जैन ग्रन्थों में श्रीकृष्ण की विजय के पश्चात् वे पाण्डवों को हस्तिनापुर का राज्य प्रदान करते हैं, तो कुछ ग्रन्थों में पाण्डव मथुरा के स्वामी बनते हैं।

( च ) इसके अतिरिक्त द्रौपदी वृत्तान्त से सम्बन्धित कुछ प्रसंग केवल जैन ग्रन्थों में ही प्राप्त होते हैं। जैसे — नागश्री और सुकुमालिका सहित उसके अनेक पूर्वभव, वैदिक परम्परा में अनुपलब्ध हैं। कुछ जैन ग्रन्थों में द्रौपदी-पाण्डव विवाह के पश्चात् पाण्डु राजा द्वारा किया जाने वाला हस्तिनापुर में कल्याणकरक महोत्सव और युधिष्ठिर का राज्याभिषेक, वनवास की अवधि में धर्मदेव द्वारा द्रौपदी हरण। इसके साथ ही द्रौपदी के महल में नारद-आगमन, द्रौपदीकृत नारद की अवहेलना, अमरकंका के राजा पद्मनाभ को द्रौपदी हरण के लिये प्रेरित करना एवं इससे सम्बन्धित सभी घटनाओं का महाभारत में अभाव है। द्रौपदी द्वारा दीक्षा-ग्रहण एवं तप करते हुए मृत्यु तथा भावी जीवन में स्त्रीपर्याय का नाश कर देव बनने का उल्लेख मिलता है।

**( छ ) द्रौपदी का व्यक्तित्व**

वैदिक परम्परा में द्रौपदी का चरित अत्यन्त गरिमामय एवं प्रभावोत्पादक है। वह एक सशक्त नारी के रूप में हमारे सम्मुख आती है। यहाँ तक कि महाभारत युद्ध में ( जो धर्म और अधर्म का प्रतीक माना जाता है ) द्रौपदी के अपमानजनित प्रतिशोध की भावना सर्वत्र ध्वनित होती है। वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में चित्रित उसके व्यक्तित्व के प्रमुख पक्षों को इस प्रकार इंगित किया जा सकता है —

स्वाभिमान द्रौपदी के व्यक्तित्व का प्रमुख गुण है। वह पुत्री, भगिनी, भार्या एवं जननी सभी रूपों में स्वाभिमानिनी परिलक्षित होती है। वह एक अत्यन्त विदुषी महिला है, जो उसकी उक्तियों, नीतिगत बातों, द्यूतभवन आदि अनेक प्रसंगों पर उसकी विद्वत्तापूर्ण एवं तर्कसंगत बातों से स्पष्ट होता है। वह सही अर्थों में सहचारिणी है एवं पतिव्रता के सभी गुण से युक्त है। वह अत्यन्त सेवा भावी है, आत्मीयजनों की सेवा को प्रथम स्थान देती है। महाभारत में वह सत्यवादिनी एवं स्पष्टवक्ता के रूप में प्रतिष्ठित है। वह महत्त्वाकांक्षिणी महिला है। नियति से हारकर वह कभी चुप बैठने वाली नारी नहीं है। वह सदा पाण्डवों को उद्यम के लिये प्रेरित करती रहती है। उसका हृदय अत्यन्त विशाल है। वह सपत्नी सुभद्रा को भी बहन की तरह स्नेह देती है और अभिमन्यु को पुत्रवत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानती है। द्रौपदी में सामान्य स्त्रीसुलभ चपलता, उत्कण्ठा आदि गुण भी दृष्टिगत होते हैं, वह केश-सज्जा, गृहकला एवं ललितकलाओं में निपुण है।

**( ज ) जैन परम्परा में द्रौपदी चरित**

जैन परम्परा में द्रौपदी के चरित का परीक्षण करने से यह स्पष्ट है कि वहाँ द्रौपदी का चरित उतना उदात्त रूप में वर्णित नहीं है, जितना कि वैदिक परम्परा में। जैन परम्परा में द्रौपदी का जीवन उसके पूर्वभवों का ही परिणाम है, जिसमें जैन-सिद्धान्तों एवं नियमों के पालन की दृढ़ता एवं उससे भ्रष्ट होने वाले की दुर्दशा चित्रित है। नागश्री द्वारा हुई जीव हिंसा के फलस्वरूप वह नाना योनियों में भटकते हुए विविध कष्टों को झेलती है। बार-बार जन्म-मृत्यु का कष्ट भोगते हुए पुनः कटुस्पर्श वाली मानुषी का जन्म प्राप्त करती है, किन्तु वहाँ भी साध्वी रूप में शिथिलाचरण के फलस्वरूप अगले जन्म में ( द्रौपदी जन्म ) पाँच पति प्राप्त करती है। इस प्रकार वैदिक परम्परा की मान्यता के विपरीत यहाँ पाँच पतियों की प्राप्ति उसके पाप का परिणाम है। पद्मनाभ द्वारा उसका हरण भी नारद का सत्कार न करने के फलस्वरूप ही होता है और परस्त्रीहरणरूपी पापकर्म करने वाले पद्मनाभ की मृत्यु होती है।

इस प्रकार महाभारत की द्रौपदी और जैन-परम्परा में वर्णित द्रौपदी की कथा में समता के साथ-साथ विषमताएँ भी विद्यमान हैं। उक्त दोनों परम्पराओं में वर्णित द्रौपदी चरित का एक तुलनात्मक अध्ययन – इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य है, जो मेरी जानकारी में कहीं नहीं है। प्रस्तुति की सुविधा की दृष्टि से इस शोध ग्रन्थ को मैंने निम्नलिखित अध्यायों में विभक्त किया है –

प्रथम परिच्छेद – "विषयप्रवेश" में सर्वप्रथम भूमिका तत्पश्चात् वैदिक एवं जैन परम्पराओं में द्रौपदी कथा के उद्भव एवं विकास का उल्लेख है।

द्वितीय परिच्छेद – "द्रौपदी कथाविषयक स्रोत" के अन्तर्गत महाभारत एवं द्रौपदीविषयक अन्य कृतियों का परिचय एवं उनमें प्रतिपादित द्रौपदी कथा तथा द्रौपदी-विषयक जैन कृतियों का परिचय एवं उनमें प्रतिपादित द्रौपदी कथा का वर्णन है।

तृतीय अनुच्छेद – "वैदिक एवं जैन परम्परागत द्रौपदी कथा का साम्य एवं वैषम्य" दिखलाते हुए तुलना की गयी है। इस अध्याय में जैन साहित्य के ग्रन्थों में भी परस्पर क्या अन्तर है, इसका भी उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में "वैदिक परम्परा एवं जैन परम्परा में द्रौपदी चरित का मूल्यांकन और अन्तिम परिच्छेद "उपसंहार" के रूप में वर्णित किया गया है।

इसके अनन्तर सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची संलग्न है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# पुस्तक समीक्षा

Book — **Jina Vacana**
Compiled and Translated by — Shri Ramanlal C. Shah
Published by — Bombay Jaina Yuvaka Sangha, Bombay
First Edition — 1995 Price — Rs. 100.00

Jina Vacana is an unique book of its kind compiled and translated by Shri Ramanlal C. Shah. It contains some of the important verses extracted from five Jaina Āgamas, i. e., *Ācārāṅga, Sūtra-kṛtāṅga, Praśnavyākaraṇa, Uattarādhyayana* and *Daśavaikālika*. Mr. Shah has translated these verses in simple language with a view that a common reader too could grasp it easily and get acquainted with different aspects of Jaina Ethics, Religion and Philosophy. These verses exhibit the concept of *Dharma, Adharma,* five great vows — Truth, Non-violance, Non-stealing, Non-possession and Celibacy, means of Salvation — *Samyagjñāna, Samyagdarśana* and *Samyag-cāritra;* nature of four types of *Kaṣāyas* ( passions ) — Anger, Pride, Deceite and Greed and their role in *Karma* bondage; importance of self-control and penance; transitoriness of worldly objects — wealth, house, etc. futilily of sensual pleasure, ideal relationship between teacher ( *Guru* ) and disciple alongwith code of conduct for Jaina ascetics and lay devotees.

We appreciate the efforts of Mr. Shah and hope that this book will be very useful for scholars as well as common readers.

—*Dr. S. P. Pandey*

पुस्तक — **आचार्य सिद्धसेन दिवाकर सूरि प्रणीत न्यायावतारसूत्र**
विवेचक — पं० सुखलालजी संघवी
प्रकाशक — शारदाबेन चिमनभाई एजुकेशनल रिसर्च सेण्टर, अहमदाबाद
संस्करण — द्वितीय, १९६५; आकार — डिमाई; मूल्य — २५.०० रुपया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यायावतार जैन न्याय का प्रथम ग्रन्थ है। यह आचार्य सिद्धसेन दिवाकर की कृति मानी जाती है। पं० सुखलाल जी संघवी द्वारा इस ग्रंथ की गुजराती व्याख्या तथा इसके प्रारम्भ में उनकी विस्तृत प्रस्तावना से युक्त यह कृति निश्चित ही जैन प्रमाणशास्त्र के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण अवदान है। प्रस्तावना में पं० सुखलाल जी संघवी द्वारा जैन न्याय की विकास-यात्रा का जो चित्रण है वह अत्यन्त मूल्यवान है तथा अनुसन्धाताओं के लिए उपयोगी है।

यह ग्रन्थ पर्याप्त समय से अनुपलब्ध था। शारदाबेन चिमनभाई एजुकेशनल रिसर्च सेण्टर के निदेशक, डॉ० जितेन्द्र बी० शाह ने इसका पुनः प्रकाशन करके एक उत्तम कार्य किया है।

उन्होंने अपने प्रकाशकीय में यह उल्लेख किया है कि **न्यायावतार** के कर्तृत्व के विषय में कुछ नवीन संशोधन हुए हैं। विशेष रूप से प्रो० मधुसूदन ढ़ाकी ने इसे सिद्धसेन दिवाकर के स्थान पर अन्य सिद्धसेन की कृति माना है किन्तु प्रो० ढाकी का यह निष्कर्ष भी अनेक दृष्टियों से समुचित प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि 'अभ्रान्त' पद का उपयोग धर्मकीर्ति के पूर्व भी बौद्ध न्याय में था यह सिद्ध हो चुका है। अतः उसके आधार पर **न्यायावतार** को अन्य सिद्धसेन की कृति मानना उचित नहीं है। दूसरे **न्यायावतार** में स्मृति, प्रत्यभिज्ञा और तर्क के प्रमाणों का अनुल्लेख और अकलंक के काल से उनका उल्लेख यही सिद्ध करता है कि **न्यायावतार** सिद्धसेन दिवाकर की ही कृति है। पुनः इससे पं० सुखलाल जी के मत की पुष्टि भी हो जाती है। यदि ग्रन्थ के परिशिष्ट में इन मन्तव्यों को भी जोड़ दिया जाता तो ग्रन्थ की महत्ता बढ़ जाती।

मुद्रण सुन्दर और निर्दोष है इस हेतु हम प्रकाशक संस्था को और उसके निदेशक डॉ० जितेन्द्र बी० शाह को धन्यवाद देते हैं।

पुस्तक – **स्वधर्म और कल्पनायोग**
लेखक – सुरेश सोमपुरा, हिन्दी अनुवाद – त्रिवेणी प्रसाद शुक्ल
प्रकाशक – स्वधर्म समिधा ट्रस्ट, १४, योगायोग, पी० एम० रोड,
विलेपार्ले ( ईस्ट ), बम्बई – ४०० ०५७
प्रथम आवृत्ति – १९९५, आकार – डिमाई पेपरबैक
मूल्य – ३५.०० रुपया

गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार, विचारक और तत्त्वचिंतक सुरेश सोमपुरा जी विरचित **स्वधर्म और कल्पनायोग** नामक कृति का हिन्दी अनुवाद श्री त्रिवेणी प्रसाद जी शुक्ल ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। इस पुस्तक में – स्वधर्म, कल्पनायोग, धर्म, मन, मानसिक शक्ति और चमत्कार,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यावहारिक कल्पनायोग, आत्मा, आस्तिक, आत्मश्रद्धा, कर्म, ब्रह्मचर्य, प्रार्थना, स्त्री-पुरुष और मुक्ति – इस प्रकार चौदह शीर्षकों में प्रश्नोत्तर विधि के माध्यम से मनुष्य के जीवन के जटिल प्रश्नों को सरलविधि से समझाया गया है। आज तक मनुष्य ने मनुष्यत्व-ईश्वरत्व प्राप्त करने के लिए केवल शरीर और बुद्धि का उपयोग किया है, मन और मन की शक्तियों की उसने उपेक्षा की है। इसीलिये वह ईश्वरत्व से दूर रहा है। इस पुस्तक का प्रतिप्राद्य यह है कि स्वधर्म और कल्पनायोग – मनुष्यत्व और मन की शक्ति द्वारा ईश्वरत्व प्राप्त करने का सरल उपाय है। यह जन-सामान्य के लिए अत्यन्त लाभकारी एवं उपयोगी है जो जीवन जीने की एक नई विधा उपस्थित करती है।

मुद्रण सुन्दर है और साजसज्जा आकर्षक है। पुस्तक संग्रहणीय एवं पठनीय है।

*— श्री असीम कुमार मिश्र*

**विद्याष्टकम्** – रचयिता मुनि श्री नियमसागर जी,
पद्यानुवादकर्ता – ऐलक श्री सम्यक्त्व सागर जी
सम्पादक — डॉ० प्रभाकर नारायण कवठेकर,
प्रकाशक— प्रदीप कटपीस, अशोक नगर, म० प्र०
प्रथम संस्करण – १९९४ आकार – क्राउन आठपेजी
मूल्य – १००.०० रुपये

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के शिष्य मुनि श्री नियम सागर जी महाराज द्वारा रचित **विद्याष्टकम्** आधुनिक युग के संस्कृत साहित्य की एक अनन्यतम कृति है। इस कृति में जहाँ एक ओर रचयिता का वैदुष्य झलकता है वहीं दूसरी ओर अद्वितीय कला-प्रदर्शन और चिन्तन की गहराई मन को झकझोर देती है। कारण यह है कि उक्त काव्य एक चित्रकाव्य है और चित्रकाव्य की विशेषता यह होती है कि उसमें चित्र के अन्तर्गत ही काव्य प्रतिष्ठित होता है। संस्कृत चित्रकाव्य की परम्परा अपनी क्लिष्टता और दुरूहता के कारण लगभग समाप्त सी हो गयी थी। इस युग में लगभग एक शताब्दी पूर्व स्थानकवासी जैन मुनि पूज्य त्रिलोक ऋषि जी महाराज द्वारा चित्रकाव्य की परम्परा पुनर्जीवित हुई। इसी क्रम में सम्प्रति मुनि श्री नियमसागर जी की यह रचना है। यह काव्य केवल आठ पद्यों का है और आठों श्लोक (अनुष्टुप) छन्द में हैं। इसके प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं। इस प्रकार इस लघुकाय काव्य में मुनि श्री ने ऐसा चमत्कार भरा है जो आधुनिक कवियों के लिये एक चुनौती है। इसका हिन्दी पद्यानुवाद ऐलक श्री सम्यक्त्व सागर जी ने किया है। काव्य का एक अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकर्षण यह भी है कि इसके अन्त में जैनधर्म-दर्शन से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या एवं दिगम्बर मुनि के आचार इन दो महत्त्वपूर्ण विषयों को समावेशित कर पुस्तक की श्रीवृद्धि की गयी है; जिससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। पुस्तक संग्रहणीय है। इसकी साज-सज्जा बड़े ही आकर्षक ढंग से की गयी है।

— *डॉ० जयकृष्ण त्रिपाठी*

पुस्तक — **मेरी इटली यात्रा की कहानी**
लेखक — हजारीमल बाँठिया
प्रकाशक — पञ्चाल शोध-संस्थान, कानपुर
प्रकाशन वर्ष — १९९३ मूल्य — रुपये १०.०० मात्र

हजारीमल जी बाँठिया पेशे से व्यापारी होकर भी भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रति अत्यन्त प्रेम रखते हैं। आपने हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान इटली निवासी डॉ० एल० पी० टेसीटोरी के बीकानेर स्थित कब्र पर भव्य समाधि बनवाया तथा उनके सम्मान में एक बृहद् समारोह का आयोजन करवाया, जिसके फलस्वरूप इस भूले साहित्यकार को, उसके हिन्दी के प्रति किये गये कार्यों को लोग जान सके।

प्रस्तुत पुस्तक में बाँठिया जी की टेसीटेरी जन्मशती समारोह में भाग लेने हेतु की गई इटली की यात्रा का रोचक वर्णन है। साथ ही इस भूले-बिसरे साहित्यकार की जीवन-गाथा भी। कृति इतिहास प्रेमियों के लिए संग्रहणीय है।

— *श्री असीम कुमार मिश्र*

पुस्तक — **समाजसेवी, साहित्यानुरागी, उदारमना हजारीमल बाँठिया**
लेखक — प्रो० भूपतिराम साकरिया

प्रस्तुत पुस्तिका में लेखक ने हजारीमल जी बाँठिया के गौरवपूर्ण जीवन का उल्लेख किया गया है। बाँठिया जी विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत, मानवीय गुणों से पूर्ण, भारतीय संस्कृति एवं साहित्य से प्रेम रखने वाले उदारमना व्यक्तित्व के धनी हैं। पुस्तिका में प्रकाशित चित्र उनके जीवन के विविध पक्षों को उजागर करते हैं।

— *श्री असीम कुमार मिश्र*

**पञ्चाल** — सम्पादक — डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव
प्रकाशक — पञ्चाल शोध संस्थान, कानपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंक — खण्ड ६, वर्ष — १९९३
मूल्य – ( व्यक्तिगत ) ५०.०० रुपये, ( संस्था ) — १००.०० रुपये

**पञ्चाल** कला, इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति से सम्बन्धित विषयों की शोध-पत्रिका है। प्राचीन भारतीय विद्या से सम्बन्धित शोध-पत्रिकाओं में इसका भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस पत्रिका के सम्पादक प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ० आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव हैं, जिनके सम्पादन में पत्रिका में मौलिक एवं शोध-परक लेख पढ़ने को मिलते हैं।

प्रस्तुत अंक के प्रथम खण्ड में प्रसिद्ध विद्वान प्रो० कृष्ण दत्त बाजपेयी की स्मृति से सम्बन्धित विभिन्न विद्वानों के संस्मरणात्मक लेख हैं। दूसरे खण्ड में शोधपरक निबन्ध हैं। तीसरे खण्ड में संस्थान के कार्य-कलाप, पत्रिका के सम्बन्ध में विद्वानों की सम्मतियाँ, पुस्तक-समीक्षा आदि छपी हैं।

पत्रिका शोधार्थियों एवं इतिहास, पुरातत्त्व, कला संस्कृति आदि से प्रेम रखने वाले जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

*— श्री असीम कुमार मिश्र*

पुस्तक — **ध्यानयोग विधि और वचन**
लेखक — महोपाध्याय ललितप्रभसागर
प्रकाशक — श्री जितयशा फाउण्डेशन, कलकत्ता
संस्करण — प्रथम, १९९५ मूल्य — रुपये २०.००

इस पुस्तक में पूज्य ललितप्रभसागर जी द्वारा जोधपुर में आयोजित ध्यान-शिविर में दिये गये प्रवचनों का संकलन है। प्रस्तुत पुस्तक में मुनि के ध्यान विधि सम्बन्धी प्रवचनों के साथ-साथ शिविर में आये साधकों के अनुभवों के भी कुछ अंश सम्मिलित हैं जिससे व्यावहारिक दृष्टि से पुस्तक की महत्ता बढ़ गयी है। यह पुस्तक ध्यान साधना के मार्ग पर चलने वाले उन साधकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है जो जीवन में शान्ति, सत्य और आनन्द की तलाश में हैं।

पुस्तक की साज-सज्जा आकर्षक है। मुद्रण निर्दोष एवं भाषा सरल है। कृति संग्रहणीय है।

*— श्री असीम कुमार मिश्र*

पुस्तक — **समय की चेतना**
लेखक — श्री चन्द्रप्रभ सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक – श्री जितयशा फाउण्डेशन, कलकत्ता
संस्करण – प्रथम

इस पुस्तक में लेखक श्री चन्द्रप्रभसागर जी ने समय के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए उस पर मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। उन्होंने समय के महत्त्व को भली-भाँति समझा है उनकी दृष्टि में मनुष्य के जीवन में सबसे कीमती चीज समय है। इसलिए हर पल का भरपूर उपयोग करना चाहिये क्योंकि एक बार बीत गया समय पुनः लौटकर वापस नहीं आता।

श्री चन्द्रप्रभ जी के समय और उससे सम्बद्ध विषयों पर ये विचार वास्तव में जनसामान्य में चेतना ला सकते हैं। पुस्तक सभी के लिए लाभप्रद एवं उपयोगी है।

— *श्री असीम कुमार मिश्र*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# जैन जगत्

## पार्श्वनाथ विद्यापीठ में जगद्गुरु शंकराचार्य श्री भारतीतीर्थ जी महाराज का भव्य स्वागत

श्री शारदापीठ शृंगेरी के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री भारतीतीर्थ जी महाराज का दि० १३-१२-६४ को सायंकाल ५ बजे विद्यापीठ में शुभागमन हुआ। इस अवसर पर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति प्रो० वी० वेंकटाचलम्; गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो० वी० एम० शुक्ल; प्रो० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, वर्तमान रेक्टर, का० हि० वि० वि०; डी० रे० का०, वाराणसी के महाप्रबन्धक श्री राजेन्द्र कुमार जैन तथा बड़ी संख्या में स्थानीय विद्वान् श्रद्धालुजन तथा जैन समाज के प्रमुख सदस्य उपस्थित रहे। विद्यापीठ के मंत्री आदरणीय श्री भूपेन्द्रनाथ जी जैन एवं श्री माँगेराम शर्मा, अध्यक्ष अखिल भारतीय ब्राह्मण महासभा; की इस सुअवसर पर उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही। श्री भारतीतीर्थ जी महाराज ने इस अवसर पर विद्यापीठ के मुख्य भवन के द्वितीय तल पर नवनिर्मित विशाल सभागार में जैन स्थापत्य और मूर्तिकला पर

प्रो० सागरमल जैन जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी को माल्यार्पण करते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष रूप से लगायी गयी चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन तथा विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित चार नवीन ग्रन्थों का लोकार्पण किया। विद्यापीठ के वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ० अशोक कुमार सिंह ने श्री भारतीतीर्थ जी महाराज के सम्मान में प्राकृत भाषा में स्वरचित अभिनन्दन-पत्र का वाचन किया। विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जी जैन ने परमपूज्य श्री भारतीतीर्थ जी महाराज का अभिनन्दन करते हुए आगन्तुक विद्वानों एवं श्रद्धालुओं का हार्दिक स्वागत किया। इस अवसर पर विद्यापीठ के प्रकाशनों का एक सेट भी प्रो० सुरेन्द्र वर्मा द्वारा श्री भारतीतीर्थ जी महाराज को भेंट किया गया। मौन व्रत के कारण अपने लिखित आशीवर्चन में स्वामीजी ने विद्यापीठ और उसकी शैक्षणिक गतिविधियों को प्रत्यक्ष देखकर

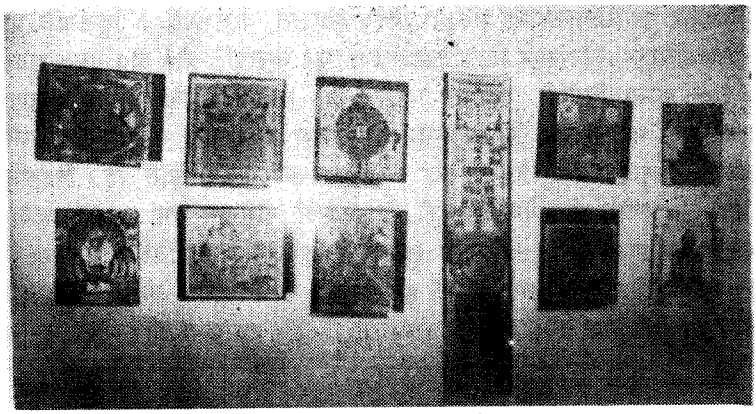

स्थायी जैन चित्र प्रदर्शनी

अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए इसके उत्तरोत्तर विकास की कामना की। अत्यल्प सूचना पर आयोजित इस सफलतम कार्यक्रम की सभी ने सराहना करते हुए इसे चिरस्मरणीय बताया और इसके भव्य आयोजन के लिये समस्त विद्यापीठ परिवार की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

## श्री सीताराम केशरी और चन्द्रजीत यादव विद्यापीठ में

राष्ट्रीय मानव संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी द्वारा पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रांगण में आयोजित तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन के अवसर पर दिनांक ५. ३. ६५ को केन्द्रीय समाज कल्याण मंत्री श्री सीताराम केशरी और पूर्व केन्द्रीय मंत्री एवं सांसद श्री चन्द्रजीत यादव का विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जैन तथा अन्य उच्चाधिकारियों ने भव्य स्वागत करते हुए उन्हें विद्यापीठ की शोधप्रवृत्तियों एवं भावी विकास की योजनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की। श्री केशरी और श्री यादव दोनों ने संस्थान के क्रियाकलापों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्थान में आयोजित सेमिनार को सम्बोधित करते हुए श्री सीताराम केसरी

शोध प्रवृत्तियों की सराहना करते हुए इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

## प्रो० सागरमल जैन 'अहिंसा इण्टरनेशनल डिप्टीमल जैन' पुरस्कार से सम्मानित

नई दिल्ली, अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा आयोजित पशु-रक्षा एवं पर्यावरण पर राष्ट्रीय सम्मेलन फिक्की सभागार में ७ मई को सम्पन्न हुआ। अनेक राज्यों से आये प्रख्यात कार्यकर्त्ताओं को सम्बोधित करते हुए मुख्य अतिथि श्री कृष्ण चंद्र पंत, अध्यक्ष, वित्त आयोग ने कहा कि २५०० वर्ष पश्चात् भी भगवान महावीर के सिद्धान्त की सार्थकता बनी हुई है। महात्मा गाँधी ने अहिंसा को जिस प्रखरता से प्रतिपादित किया वह अपूर्व है और उसे जीवन में सक्रियता से अपनाने की आज बहुत आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि सहयोग की भावना के साथ हमें प्रत्येक जीव का, हर प्रकार के पशु-पक्षी का महत्त्व समझते हुए सम्मान करना चाहिए। पशुओं की जीवन में उपयोगिता है। ऐसे सम्मेलनों द्वारा पशु-रक्षा के प्रति पर्याप्त जन-चेतना उत्पन्न होती है एवं नई कार्य विधियाँ प्रकाश में आती हैं। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए जैन दर्शन एवं साहित्य के विशिष्ट विद्वान प्रो० सागरमल जैन, निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी को **''अहिंसा इण्टरनेशनल डिप्टीमल जैन पुरस्कार''** से सम्मानित किया। इस अवसर पर श्री लक्ष्मीनारायन मोदी, नई दिल्ली; श्री केशरीचंद मेहता, भालेगाँव; श्री सुखलाल गोलेच्छा, सुमन जैन, राजनाँद गाँव को तथा श्रीपाल जैन 'दिवा',

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोपाल को उनकी अहिंसा के क्षेत्र में की गई सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया।

श्री कृष्णचन्द पन्त प्रो० सागरमल जैन को सम्मान-चिह्न भेंट करते हुए

इस अवसर पर श्री चरतीलाल गोयल, श्री सतीश जैन, प्रो० वी० पी० भुगदल, श्री सुरेन्द्र भाई मेहता, श्री विष्णुहरि डालमिया, श्री केशरीचंद मेहता, प्रो० सागरमल जैन, श्री गुमानमल लोढ़ा, श्री लक्ष्मी नारायण मोदी, डॉ० मधु गुप्ता, श्री राम निवास लखौटिया, श्री डालचंद जैन, श्री यशपाल जैन एवं श्री प्रेमचंद जैन आदि ने अपने विचार व्यक्त किये।

**सतीश कुमार जैन**
महासचिव, अहिंसा इण्टरनेशनल
५३, ऋषभ विहार, दिल्ली – ११० ०६२

## आचार्य पद्मसागर जी महाराज विद्यापीठ में

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय ही नहीं वरन् समस्त जैन जगत् के अत्यन्त प्रभावशाली आचार्य श्री पद्मसागर जी महाराज का उनके कलकत्ता चातुर्मास हेतु विहार के क्रम में वाराणसी में शुभागमन हुआ। अपने प्रवास में आचार्यश्री वाराणसी के जैन तीर्थस्थानों की यात्रा के क्रम में विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जैन के स्नेहपूर्ण निमन्त्रण पर दिनांक ३. ५. ६५ को यहाँ पधारे। इस अवसर पर बड़ी संख्या में स्थानीय विद्वानों एवं जैन समाज के लोगों की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। प्रो० सागरमल जैन तथा विद्यापीठ के अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चाधिकारियों ने आचार्यश्री का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए यहाँ की शोध-प्रवृत्तियों एवं इसके भावी विकास की योजनाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला। आचार्यश्री ने अपने आशीर्वचन में जैन विद्या के प्रचार-प्रसार और शोध के क्षेत्र

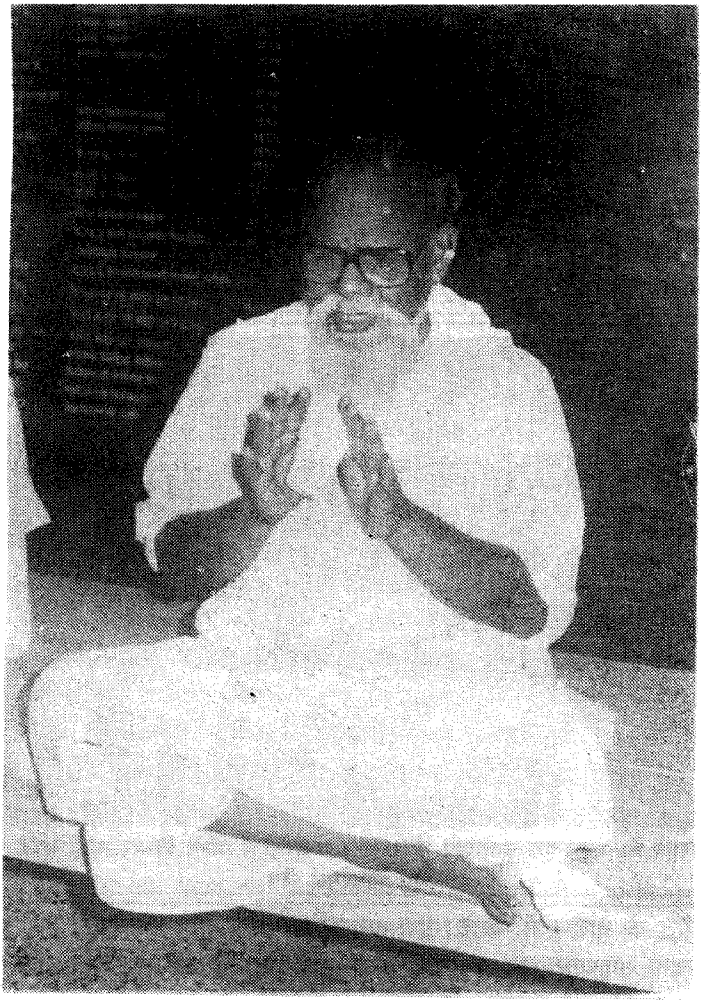

**आचार्य पद्मसागर जी संस्थान में आयोजित एक सभा को सम्बोधित करते हुए**

में अतुलनीय योगदान के लिए प्रो० सागरमल जैन तथा उनके अधीन कार्यरत सुयोग्य एवं कर्मठ युवा अधिकारियों को धन्यवाद देते हुए इसके उत्तरोत्तर प्रगति की कामना की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## पं० चम्पालाल जी श्री ज्ञानसागर स्मृति पुरस्कार से सम्मानित

आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के बाईसवें समाधि-दिवस पर दि० २६/५/६५ को उन्हीं के समाधि-स्थल नसीराबाद में पं० चम्पालाल जैन को सकल दि० जैन समाज, नसीराबाद द्वारा ५१,०००.०० रुपये नकद एवं प्रशस्तिपत्र आदि से सम्मानित किया गया।

## महामहिम राज्यपाल उ० प्र० एवं महामहिम राज्यपाल पांडिचेरी का विद्यापीठ प्रांगण में आगमन

राष्ट्रीय मानव संस्कृति शोध-संस्थान, वाराणसी के तत्वावधान में आयोजित वैद्यराज पं० यदुनन्दन उपाध्याय सम्मान समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल, महामहिम श्री मोतीलाल वोरा एवं पांडिचेरी की राज्यपाल महामहिम श्रीमती राजेन्द्र कुमारी बाजपेयी दिनांक ३०. ५. ६५ को

**वैद्यराज पं० यदुनन्दन उपाध्याय के सम्मान समारोह में अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रो० सागरमल जैन**

विद्यापीठ के प्रांगण में पधारे। इस अवसर पर महामहिम राज्यपाल द्वय ने पं० यदुनन्दन उपाध्याय का स्वागत करते हुए आयुर्वेद की समृद्ध विरासत को अक्षुण्ण रखने एवं उसके संरक्षण तथा संवर्धन की बात कही। विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जैन ने आयुर्वेद के क्षेत्र में वैद्यराज पं० यदुनन्दन उपाध्याय के अवदान की चर्चा करते हुए कहा कि उपाध्यायजी उस पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं जिसकी दृष्टि में चिकित्सा और शिक्षा व्यवसाय नहीं, सेवा थे। आज हमारा दुर्भाग्य है कि हमने चिकित्सा और शिक्षा को व्यवसाय बना दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्य अतिथियों एवं अन्य आगन्तुकों का स्वागत करते हुए उन्होंने उन्हें विद्यापीठ की प्रगति से भी अवगत कराया। राज्यपाल द्वय ने विद्यापीठ में हो रहे शैक्षणिक एवं उत्कृष्ट प्रकाशन कार्यों की सराहना करते हुए उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

## विद्यापीठ के प्रांगण में

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रबन्ध मण्डल की दि० २५/६/९५ को आहूत बैठक में भाग लेने हेतु विद्यापीठ के अध्यक्ष श्री नेमिनाथ जी, उपाध्यक्ष श्री नृपराज जी, मंत्री श्री भूपेन्द्र नाथ जी और सहमंत्री श्री इन्द्रभूति बरार विद्यापीठ के प्रांगण में पधारे। इस अवसर पर संस्थान के भावी विकास के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने के लिए स्थानीय विद्वानों एवं समाज के गण्यमान्य लोगों की एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें केन्द्रीय तिब्बती विद्या उच्च अध्ययन संस्थान के कुलपति प्रो० रिम्पोछे, प्रो० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, प्रो० माहेश्वरी प्रसाद, प्रो० एम० ए० ढाँकी, प्रो० गोकुलचन्द जैन, डॉ० सुदर्शनलाल जैन, डॉ० फूलचन्द जैन, डॉ० कमलेश कुमार जैन, गाँधी विचार संस्थान के पूर्व निदेशक डॉ० नागेश्वर प्रसाद सिंह आदि विद्वानों तथा समाज की ओर से सर्वश्री मिलापचन्द गाँधी, श्री राजेन्द्र कुमार गाँधी, श्री पारसमल भण्डारी, श्री सुरेश कोठारी आदि ने भाग लिया और अपने विचार व्यक्त किये। विचार-विमर्श के क्रम में सभी ने पार्श्वनाथ विद्यापीठ को मान्य विश्वविद्यालय बनाने हेतु किये गये प्रयत्नों पर संतोष व्यक्त करते हुए कहा कि वाराणसी जैसे विद्यानगरी में तीन-तीन विश्वविद्यालयों के होते हुए भी प्राकृत भाषा, जैन विद्या और अहिंसा के उच्चस्तरीय अध्ययन-अध्यापन की सुविधा का अभाव था उसकी पूर्ति इस मान्य विश्वविद्यालय की स्थापना से हो जायेगी। वक्ताओं ने भविष्य में आने वाली समस्याओं के प्रति भी विद्यापीठ के अधिकारियों को सचेष्ट किया। प्रबन्ध मण्डल की ओर से बोलते हुए श्री नेमिनाथ जी, भूपेन्द्रनाथ जी जैन तथा नृपराजजी जैन ने कहा कि संस्थान ने प्रो० सागरमल जैन के निर्देशन में जिस ढंग से प्रगति की है, उसे देखते हुए विश्वास है कि निकट भविष्य में यह संस्था मान्य विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण कर लेगी। साथ ही आपने यह भी कहा कि शासन की ओर से मान्य विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये तीन करोड़ रुपये की स्थायी निधि की आवश्यकता बतलायी गयी है, उसे समाज के सहयोग से ही पूरा किया जा सकता है। अतः पार्श्वनाथ विद्यापीठ को विश्वविद्यालय का स्वरूप दिलाने के लिए समाज का उसे अधिकाधिक आर्थिक सहयोग देना आवश्यक है। उन्होंने यह भी बतलाया कि विद्यापीठ को दिया गया दान शत-प्रतिशत आयकर से मुक्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## आचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी का पत्र अध्यक्ष के नाम

दिनांक २५/५/६५

श्रीयुत धर्मप्रेमी सुश्रावक लाला नेमिनाथ जी जैन !
अध्यक्ष, श्री पार्श्वनाथ शोध संस्थान

महामहिम स्वर्गीय आचार्य सम्राट आत्मारामजी म० के दीक्षा शताब्दी वर्ष को मनाने का सौभाग्य हमें सम्प्राप्त हुआ। आचार्य सम्राट युगपुरुष थे। उनका समग्र जीवन जनचेतना के अभ्युत्थान के लिये व्यतीत हुआ। वे श्रमण संघ के सार्वभौम सत्ताप्राप्त आचार्य थे। पर सत्ता की लिप्सा उनके अन्तर्मन को छू न सकी। वे एक महकते हुए गुलाब की तरह थे। जो उन्मुक्त भाव से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सुरभि बाँटते रहे, वे एक ज्योतिर्मय प्रकाशपुंज थे, उनका आलोकमय जीवन समाज के लिये वरदान रूप था। यही कारण है कि सादड़ी सन्त सम्मेलन में समस्त संघ ने आप को श्रमण संघ के आचार्य पद पर निर्वाचित किया। जीवन की सान्ध्य बेला तक श्रमण संघ के निष्ठा, भक्ति और श्रद्धा के केन्द्र बने रहे, यह आप की लोकप्रियता का प्रबल प्रमाण है।

आप श्री का अध्ययन बहुत ही गम्भीर एवं विशाल था। प्रखर प्रतिभा और अप्रतिहत मेधा के बल पर आपने जो पाण्डित्य अधिगत किया वह हम सभी के लिये गौरव की वस्तु है। आपकी श्रुत सेवा और संघ सेवा सभी के लिये प्रेरणास्रोत रही, हजारों-हजार लोगों ने, आपके साहित्य और जीवन से प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्राप्त की थी। वे ज्ञान के सागर और शान्ति के अग्रदूत थे। वे प्रज्ञापुरुष थे। उनकी लेखनी में ज्ञान की गम्भीरता के साथ अनुभव की सहजता थी और थी विषय की विशदता और भाषा की सहज सुबोधता। उस स्थितप्रज्ञ प्रज्ञाप्रदीप महागुरु की दीक्षा शताब्दी वर्ष मनाने का हमें सुअवसर प्राप्त हुआ।

श्रमण संघ ने इस शताब्दी वर्ष का शुभारम्भ आचार्य सम्राट की पावन पुण्यभूमि लुधियाना में किया। उस समय मेरे अन्तर्मानस में एक विचार तरंगित हो रहा था कि आचार्य प्रवर की पावन पुण्यधरा पंजाब में बूचड़खाना सदा के लिए बन्द हो जाय तो लाखों-करोड़ों जीवों को अभयदान मिलेगा। आचार्य सम्राट् की असीम कृपा से पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार बेअन्त सिंह जी ने अपने सहयोगियों के परामर्श से इस कार्य को सदा-सदा के लिए बन्द कर, उस महागुरु के प्रति अपनी अनन्त श्रद्धा समर्पित की। समाज सदा-सदा के लिये उनका आभारी है।

दूसरी मेरी यह हार्दिक भव्य भावना थी कि आचार्य सम्राट ज्ञानयोगी थे। उनका सम्पूर्ण जीवन ज्ञानमय था, जो सदा ही अज्ञान के अन्धकार को दूर करता रहा, इसलिये ज्ञान की अखण्ड-ज्योति को प्रज्वलित करने के लिये "जैन विश्वविद्यालय" की स्थापना हो जाय तो कितना श्रेयस्कर हो। उस महागुरु ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे अन्तर्हृदय की आवाज को सुनी और वर्षावास के उपसंहार काल में पूज्य सोहनलाल स्मारक पार्श्वनाथ शोधपीठ के मन्त्री श्री भूपेन्द्रनाथ जी तथा महामनीषी डॉ० सागरमल जी उपस्थित हुए और उन्होंने यह हर्ष के समाचार प्रदान किये, कि पार्श्वनाथ शोधपीठ को विश्वविद्यालय बनाने के लिये शासन की ओर से स्वीकृति प्राप्त हो रही है। आवश्यकता है समाज के मात्र आर्थिक सहयोग की।

मैं जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि उस महागुरु की असीम कृपा से यह कार्य भारत सरकार की ओर से सम्पन्न हो गया है। ऐसा समाजरत्न सुश्रावक हीरालालजी जैन के द्वारा ज्ञात हुआ। पार्श्वनाथ शोधपीठ का निर्माण महागुरु आचार्य सम्राट् पूज्य श्री सोहनलाल जी म० की स्मृति में महामहिम आचार्य श्री काशीराम जी म० की प्रेरणा से उनके परम भक्त सुश्रावक लाला हरजसरायजी, लाला रतनचंद जी जैन आदि ने किया था। यह संस्था स्थानकवासी जैन समाज की गौरवपूर्ण संस्था है। जहाँ से सैकड़ों शोधार्थियों ने जैन धर्म, जैन दर्शन, साहित्य और संस्कृति पर महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध लिखकर, पीएच० डी० उपाधि से समलंकृत हुए हैं, उसी संस्था को विश्वविद्यालय बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः समाज का यह दायित्व है कि प्रस्तुत संस्था को सभी प्रकार से सहयोग करें, जिससे कि यह विश्वविद्यालय जैन शासन की प्रभावना करने में अपना अपूर्व योगदान दे सके। श्रमण और श्रमणियाँ भी वहाँ रहकर या उनके नेतृत्त्व में आगम और दर्शन सम्बन्धी शोधकार्य सहज रूप से कर सकते हैं।

आत्मदीक्षा शताब्दी वर्ष की यह महान उपलब्धि हमारे संघ के समुत्कर्ष हेतु वरदान रूप रहेगी, यही मेरी मंगल कामना है। जिन-जिन महामनीषियों ने इस कार्य को सम्पन्न कराने में सहयोग दिया है, वे सभी साधुवाद के पात्र हैं।

मैं महागुरु आचार्य सम्राट् के चरणों में अनन्त आस्था से वन्दन करता हुआ यही प्रार्थना करता हूँ कि दीक्षा शताब्दी की पावन बेला में विश्वविद्यालय का आकार ग्रहण कर रही यह संस्था अहर्निश प्रगति करती रहे।

आपका

**आचार्य देवेन्द्र मुनि**

## जैन एकता सम्मान समारोह सम्पन्न

अखिल भारतीय समग्र जैन चातुर्मास सूची प्रकाशन समिति द्वारा बम्बई में श्री दीपचन्द जी गार्डी की अध्यक्षता में जैन एकता सम्मेलन समारोह–६५ का आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस समारोह में जैन समाज की "चार जैन पत्रिकाओं – **जैन भारती, आत्मरश्मि, विजयानन्द** और **कुन्दकुन्दवाणी** को 'जैन एकता साहित्य पुरस्कार १९९३' एवं श्री नेमिनाथ जैन, इन्दौर को जैनरत्न तथा श्री भरतभाई शाह, श्री कान्तिलाल जैन एवं श्री सुखलाल जी कोठारी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज रत्न की उपाधि से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्री अशोक कुमार जैन, श्री अभय कुमार छजलानी, श्री जैनेन्द्र कुमार जैन आदि कई राष्ट्रीय पत्रकार भी सम्मानित किये गये।

## डेरावासी का कत्लखाना सदैव के लिए बन्द

मानव मूलतः शाकाहारी है, न कि मांसाहारी किन्तु यह सर्वथा अनुचित है कि मानव जाति अपने मूल आहार शाकाहार को छोड़कर मांसाहार में द्रुतगति से प्रवृत्त हो रहा है जबकि पशुजगत् में एक भी ऐसा पशु नहीं है जो शाकाहारी होकर मांसाहारी हो गया हो। मांसाहार का प्रचलन होने से मांस की प्राप्ति हेतु बड़ी संख्या में बूचड़खाने स्थापित किये गये। इसी क्रम में पंजाब प्रान्त के डेरावासी नामक ग्राम में भी पिछले दिनों एक बूचड़खाना या कत्लघर का निर्माण हुआ। पंजाब के अहिंसा प्रेमियों ने अपने-अपने स्तर से इसका विरोध प्रारम्भ किया, जिनमें श्री हीरालाल जी जैन का प्रयास स्तुत्य है। जैन धर्म दिवाकर आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी की प्रेरणा एवं श्री हीरालाल जी के सद्प्रयासों के परिणामस्वरूप पंजाब के मुख्यमंत्री श्री बेअन्त सिंह जी ने उक्त कत्लखाने को सदैव के लिये बन्द करा दिया।

## आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरीश्वर जन्म शताब्दी शिक्षणनिधि द्वारा प्रवर्तित ऋण छात्रवृत्ति योजना

श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई के तत्त्वावधान में स्थापित उक्त शिक्षण-निधि द्वारा पिछले वर्षों की भाँति इस वर्ष भी श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजक समाज के उन सभी जरूरतमन्द छात्र-छात्राओं से, जो चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, स्थापत्य कला, चित्रकला, वाणिज्य तथा लेखापरीक्षक एवं जैन धर्म की उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, ३० जुलाई १९९५ तक आवेदन आमन्त्रित करती है। आवेदन पत्र तीन रूपये का मनीआर्डर या डाक टिकट आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरीश्वर जन्म शताब्दी शिक्षण निधि C/o श्री महावीर जैन विद्यालय, अगस्त क्रान्ति मार्ग, बम्बई के पते पर भेजकर प्राप्त किया जा सकता है।

## सुमेर कुमार जैन का सम्मान

राजस्थान के प्रमुख व्यवसायी तथा जैनसमाज की विभिन्न सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं के साथ-साथ पिछले तीन दशकों से रोटरी क्लब, जयपुर से सम्बद्ध और अपनी विशिष्ट सेवाओं के लिये विभिन्न अवसरों पर सम्मानित श्री सुमेर कुमार जैन रोटरी अन्तर्राष्ट्रीय जिला ३०५० के वर्ष १९९५–१९९६ के नवनिर्वाचित प्रान्तपाद का पद भार १ जुलाई १९९५ को ग्रहण किया। पिछले फरवरी में रोटरी अन्तर्राष्ट्रीय एसेम्बली में प्रशिक्षण हेतु आपने सपत्नीक अमेरिका एवं अन्य कई यूरोपीय देशों का भी भ्रमण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# पार्श्वनाथ विद्यापीठ

( विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्य विश्वविद्यालय हेतु विचाराधीन )

आई० टी० आई० मार्ग, करौंदी, वाराणसी–५

पार्श्वनाथ विद्यापीठ अपने विकासक्रम में मान्य विश्वविद्यालय का रूप लेने जा रहा है। निकट भविष्य में विद्यापीठ को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता मिलने की पूरी सम्भावना है। विद्यापीठ अगस्त, १९९५ से चार नये विभागों में शिक्षण कार्य प्रारम्भ करने जा रहा है, जो अनुमानतः अगस्त के प्रथम सप्ताहांत से प्रारम्भ हो जायेगा।

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में अन्य विवरण निम्न हैं–

## प्रवेश सूचना

निम्नलिखित द्विवर्षीय पूर्णकालिक स्नातकोत्तर एम० ए० कक्षाओं में प्रवेश हेतु आवेदन पत्र आमन्त्रित किये जाते हैं। आवेदक एक ही आवेदन पत्र पर विभिन्न विषयों हेतु अपना वरीयता क्रम देकर आवेदन कर सकते हैं।

**( १ ) एम० ए० : प्राकृत भाषा एवं साहित्य** (Prakrit Language & Literature)

***योग्यता*** –संस्कृत/प्राकृत/पाली/हिन्दी ( अपभ्रंश )/दर्शन/भारतीय धर्म दर्शन/प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व/भाषा विज्ञान में स्नातक या स्नातकोत्तर उपाधि।

**( २ ) एम० ए० : जैन विद्या** ( Jainology ) **(जैन दर्शन, धर्म, इतिहास, संस्कृति, कला एवं स्थापत्य)**

***योग्यता*** संस्कृत/प्राकृत/पाली/हिन्दी ( अपभ्रंश )/दर्शन/भारतीय धर्म दर्शन/प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व/में स्नातक या स्नातकोत्तर उपाधि।

**( ३ ) एम० ए०/एम० एससी० : तनाव-संतुलन, नैदानिक मनोविज्ञान, स्वास्थ्य और योग** ( Stress Management, Clinical Psychology and Yoga )

***योग्यता***– मनोविज्ञान/जीव विज्ञान/दर्शन/भा० ध० द०/प्र० भ० इ० संस्कृति एवं पुरातत्व/चिकित्सा विज्ञान में स्नातक या स्नातकोत्तर उपाधि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

( ४ ) एम० ए० : **अहिंसा, शान्ति और मूल्य-शिक्षा** ( Non-Violence, Peace and Value Education )

***योग्यता*** – समाजशास्त्र/राजनीति शास्त्र/शिक्षाशास्त्र/दर्शन/भा० ध० द०/ प्रा० भा० इ० संस्कृति एवं पुरातत्व एवं गाँधीविचार दर्शन में स्नातक या स्नातकोत्तर उपाधि।

सभी विषयों में आवेदन करने के लिए स्नातक स्तर पर न्यूनतम प्राप्तांक ५०% ( अ० जा०/अ० ज० जा० हेतु ४५% ) अनिवार्य है।

***आवास*** : छात्रों/छात्राओं हेतु अलग-अलग छात्रावासों में सीमित स्थान उपलब्ध है। इसी प्रकार साधु-साध्वियों के लिए भी आवास एवं भोजनालय की सुविधा उपलब्ध है।

***छात्रवृत्ति*** : प्रत्येकविषय में १० माह हेतु ४००रू० प्रति माह की दस-दस छात्रवृत्तियों की व्यवस्था है। छात्रवृत्ति प्राप्त हेतु (क) नियमित रूप से ७५% उपस्थिति एवं (ख) मासिक परीक्षा में न्यूनतम ५०% अंकों से उत्तीर्ण होना अनिवार्य है।

नियमावली एवं आवेदन पत्र **कुलसचिव, पार्श्वनाथ विद्यापीठ** से ५०रू० नगद अथवा धनादेश ( मनीआर्डर ) भेजकर प्राप्त किये जा सकते हैं। आवेदन पत्र प्राप्त करने की **अन्तिम तिथि २५ जुलाई, १९९५** है। प्रवेश हेतु लिखित एवं मौखिक परीक्षा ३१ जुलाई, १९९५ को पूर्वाह्न १० बजे, विद्यापीठ के प्रांगण में होगी। लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार हेतु अलग से कोई सूचना नहीं दी जाएगी। चयन परीक्षा हेतु आवेदक को किसी प्रकार का मार्ग व्यय अथवा अन्य कोई भत्ता देय नहीं होगा।

कुलसचिव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# NO PLY, NO BOARD, NO WOOD.

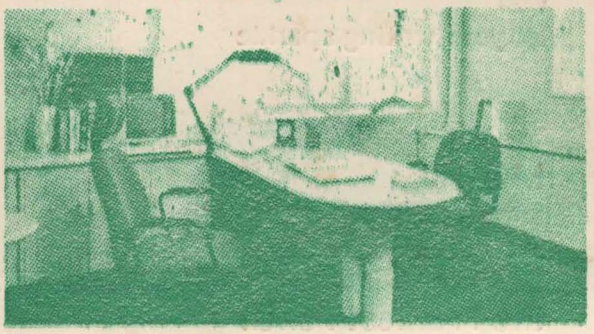



## ONLY NUWUD.®

**INTERNATIONALLY ACCLAIMED**

*Nuwud MDF is fast replacing ply, board and wood in offices, homes & industry. As ceilings,*

**DESIGN FLEXIBILITY**

*flooring, furniture, mouldings, panelling, doors, windows... an almost infinite variety of*

**VALUE FOR MONEY**

*woodwork. So, if you have woodwork in mind, just think NUWUD MDF.*

Arrus Communications

**NUCHEM LIMITED**

E-46/12, Okhla Industrial Area,
Phase II, New Delhi-110 020
Phones : 632737, 633234,
6827185, 6849679
Tlx: 031-75102 NUWD IN
Telefax: 91-11-6848748



IS:12406

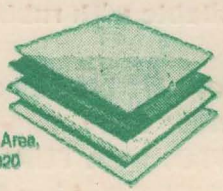

ISI

NUWUD MDF

*The one wood for all your woodwork*

**MARKETING OFFICES:** • **AHMEDABAD:** 440672, 469242 • **BANGALORE:** 2219219 • **BHOPAL:** 552760 • **BOMBAY:** 8734433, 4937522, 4952648 • **CALCUTTA:** 270549 • **CHANDIGARH:** 603771, 604463 • **DELHI:** 632737, 633234, 6827185, 6849679 • **HYDERABAD:** 226607 • **JAIPUR:** 312636 • **JALANDHAR:** 52610, 221087 • **KATHMANDU:** 225504, 224904 • **MADRAS:** 8257589, 8275121

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org